हमारे मुस्लिम संत कवि

कृ० गो० वानखडे गुरुजी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आश्विन 1906, सितम्बर 1984

मूल्य : 12 00

निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110 001 द्वारा प्रकाशित

विक्रय केन्द्र ○ प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कॉमर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई 400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता 700069
- एल० एल० ऑडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास 600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना 800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम 695001
- 10 बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ 226001
- प्रकाशन विभाग, राज्य पुरातत्त्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद 500004

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक द्वारा मुद्रित।

"उपराष्ट्रपति, भारत

नई दिल्ली

सितम्बर 24, 1982

यह जानकर मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है कि श्री कृ० गो० वानखडे गुरुजी ने 'हमारे मुस्लिम संत कवि' पुस्तक में विभिन्न मुस्लिम संत कवियों की जीवनियों का संकलन किया है, जो सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित की जा रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि समर्पण की भावना से लिखी गई यह कृति विभिन्न धर्मों के लोगों में आपसी सद्भाव व भाईचारे को बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध होगी।

आशा है, यह कृति हमारे संतों की वाणियों और उपदेशों से वर्तमान पीढ़ी को प्रेरित करेगी।

मैं इसकी सफलता की कामना करता हूं।

975
2/11

एम हिदायतुल्ला

समर्पण

एक हृदय हो भारत जननी

भारतीय एकता के प्रतीक श्री गुरुदेव

आचार्य भणसाली जी को

जिनके चरणो में बैठकर

गुर का ज्ञान, पिता का आशीष

और मा की ममता प्रसाद

रूप में पाई।

अजस्त्र धारा

भारतीय इतिहास में प्राचीन काल से संत साहित्य की जो अजस्र धारा बह रही है, उसने सदैव हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया है। संतों की यह अमृत वाणी निराशा एवं अवसाद के क्षणों में मानव मात्र को आशा की ज्योति उपलब्ध कराती रही है। वस्तुत इस वाणी ने सदा समान रूप से मानव मात्र के कल्याण का पथ प्रदर्शित किया है।

संतों की कोई जाति नहीं होती—'जात न पूछो साध की'। वे चाहे किसी भी जाति के हों, आदि से अंत तक सर्वप्रथम संत ही होते हैं। उन्हें ऐसा ही सन्मार्ग इंगित करना है, जिस पर चल कर प्राणी-मात्र अपने सही लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके, मनुष्य-मनुष्य के बीच विभिन्न धर्मों और मतों के होते हुए भी सामाजिक एकता एवं धार्मिक समन्वय की भावना सुदृढ हो। हम चाहे किसी भी धर्म को माननेवाले हों हमें यह याद रखना है कि सबका ईश्वर या खुदा एक ही है। इसी एकेश्वरवाद का संदेश देकर इन संत-कवियों ने देश की एकता को बनाए रखने का गुरुतर दायित्व निभाया है। समय समय पर देश में हिंदू और मुस्लिम धर्मावलम्बियों को राम-रहीम और अवतार-पैगम्बर में एक ही रूप के दर्शन करने या उनका आभास करने की प्रेरणा इन संत-कवियों ने ही दी। रसखान मुसलमान होते हुए भी यह कहने में समर्थ हुए "कोटिन्हु हौं कलि धौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं" अथवा या "लकुटि अरु कामरिया पर, राज तिहुँ पुर का तजि डारौं।"

आज के युग में आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य संकीर्ण भावना का शिकार न हो, अपने उदात्त दृष्टिकोण से एक धर्म या जाति वाले दूसरे धर्म और जाति वालों के निकट संपर्क में आने का प्रयास करें। निकटता से ही एक दूसरे के बारे में भ्रम, संदेह, भय आदि ऋणात्मक धारणाओं का निवारण संभव है। स्वस्थ संबंधों की आधारशिला अधिकाधिक परस्पर संपर्क और सद्भाव हो हो सकता है। इस महान उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में प्रस्तुत पुस्तक प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होगी, यह हमारी अपेक्षा और विश्वास है। वानखडे गुरुजी स्वयं संत साहित्य के चलते-फिरते विश्व कोश हैं और यह कृति उसी विश्वकोश का भगीरथ प्रयास है।

—डॉ० श्याम सिंह शशि
निदेशक

प्राक्कथन

"इन मुसलमान हरिजनन प
कोटिन हिन्दुन वारिए"
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

दीपावली के अवसर पर जिस प्रकार असख्य दीपक अधकाराच्छन्न गगन-मडल को प्रकाशित कर देते ह, उसी प्रकार सतो की जीवनिया भी माया मोह के अधकारमरे विश्व को आलोकित करती ह। हृदय पर जैसा प्रभाव सच्चरित्र डालता ह, वसा अन्य कोई साधन नहीं। सतो के सदेश मानवता के लिए महान् आध्यात्मिक सम्पदा है।

सत का चरित्र सदव नित नवीन ह, मानव जीवन के लिए मगलमय है। वह प्राचीनकाल से आज तक मानव जीवन को सात्विक स्फूर्ति प्रदान करता आया ह। चिन्तन, मनन, आदश व्यवहार, मन तथा इद्रियो पर विजय, पवित्र सेवा भाव, त्याग और तपस्या, विषय विरक्ति, भगवद्भक्ति और प्रेम का सच्चा स्वरूप सन भक्ता के जीवन में ही पाया जाता ह। भक्तो के भाव विभिन्न, विचित्र और असख्य होते ह। अपने प्रभु के साथ वे अपने भाव के अनुसार ही तादात्म्य स्थापित करते ह। भक्तवत्सल भगवान भी भक्त के भाव के अनुसार ही लीला करके अपने भक्तो को सुख देते ह।

यह पुस्तक सतो के विविध, परम पवित्र मधुर भावो की झाकी है, जिनका स्मरण अन्त करण को पवित्र और ईश्वर में प्रीति उत्पन्न करता ह। इसीलिए इसकी बहुत बडी उपयोगिता ह। वास्तव में, सत चरित्र मानव जाति के लिए सर्वोत्तम विद्यालय ह। मनुष्य इस विद्यालय से जो पाठ ग्रहण कर सकता ह, वह अन्यत्र कहीं भी सभव नहीं। आज तक ससार पर सतो के जीवन का जितना प्रभाव पडा ह, उतना शायद और किसी का नहीं। आज मनुष्य में जितनी भी मानवता नजर आ रही ह, वह उन्हीं के जीवन तथा उपदेशो का ही प्रभाव ह। इसीलिए इसकी बडी उपयोगिता ह।

इस पुस्तक में चुने हुए 41 मुस्लिम सत कवियो का सक्षिप्त जीवन-परिचय उनके उपदेशा सहित दिया गया ह। उनके जीवन दशन तथा उपदेशों से मानव जीवन

को नई प्रेरणा मिलती ह। सत, भक्त, महात्मा किसी भी धम में पदा हुए हों, वे कभी भी देश काल, जाति और सम्प्रदाय की सीमा में सीमित नहीं होते। उनकी वाणी सावजनिक और सावकालिक होती ह। इस पुस्तक में दिए हुए सभी सतो की जीवनिया यद्यपि सक्षेप में दी गई ह, फिर भी उनके जीवन की मख्य मुख्य बातें देने की चेष्टा अवश्य की गई ह।

आमतौर पर सतो का जीवन चमत्कार से भरा होता ह। उनके जीवन में चमत्कारिक घटनाओ का होना कोई आश्चय की बात नहीं। लेकिन, इस पुस्तक में चमत्कारपूण बातें कम-से कम दी गई ह, क्याकि आज का बुद्धिजीवी समाज उसे सहज रूप में ग्रहण नहीं कर पाता।

सत भक्तों के जीवन में चमत्कार हो सकते ह, पर तु चमत्कार या अलौकिक घटनाओ में सत भक्तों के पवित्र जीवन की पूणता नहीं है। चमत्कारों के बल पर सत भक्त कहलाना या अपने आपको वसा कहना, सही रूप में सच्चे भक्त का तिरस्कार करना ह। सत भक्तो का जीवन सवथा कल्याणकारी, वराग्यमय, ज्ञानमय और प्रेममय होता ह। ऐसा जीवन स्वय आदरणीय, स्पृहणीय और अभिनदनीय ह।

आज के वैज्ञानिक युग में हमारा जीवन भौतिकता में इतना रम गया ह कि जीवन मूल्य ही बदल गए ह। इसी कारण जीवन में दिनो दिन अशाति आ रही ह। अत जब तक विज्ञान और अध्यात्म का सम वय नहीं होगा, तब तक मानव को सुख शाति प्राप्त नहीं हो सकती।

आशा ह, इस पुस्तक का जनता जनादन में आदर होगा और इसके पठन पाठन से सभी वर्गों और धर्मों के लोग लाभान्वित होंगे।

—कृ० गो० वानखडे गुरुजी

अनुक्रम

	पृष्ठ

कबीर साहब

भक्ति आन्दोलन की परपरा मे कबीर साहब गुरु रामानन्दजी के मतानुयायी माने जाते हैं। इन्होंने निर्गुण भाव से प्रेरित होकर अपनी सारी रचनाए की हैं। उच्च श्रेणी के भक्तो में कबीर साहब का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है।

कबीर साहब ऐसे समय मे हुए जब अलौकिकता का प्राधान्य था। इनके नाम के साथ अलौकिक कथाए सबद्ध है। इनके जन्म सवत् के विषय मे विद्वानो में काफी मतभेद हैं। कबीर-पथी लोग इनको अलौकिक महत्ता प्रदान करते हुए इनकी आयु 300 वर्ष मानते हैं। उनके मत से इनका जन्म सवत् 1205 मे और निर्वाण 1505 मे हुआ। तथापि, उनके सबध मे जो निम्नलिखित दोहा है, वह अधिक प्रसिद्ध व मान्य है –

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ-सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भए॥

इनकी उत्पत्ति के सबध में कई प्रकार की किवदन्तिया है। कहा जाता है कि स्वामी रामानद के आशीर्वाद से ये काशी की विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए। लज्जा के मारे वह इस नूतन बालक को लहरतारा के ताल के पास फेंक आयी। नीरू नाम का एक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया। उसीने उस बालक का पाला-पोसा। आगे चलकर यही बालक कबीर कहलाया। कुछ कबीर-पथी महानुभावों की मान्यता है कि कबीर साहब का आविर्भाव काशी के लहरतारा तालाब में कमल के एक अति मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप मे हुआ था। एक प्राचीन ग्रथ मे लिखा है कि किसी महान योगी के और प्रतीति नामक देवागना के गर्भ मे भक्तराज प्रह्लाद ही कबीर के रूप में सवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को प्रगट हुए थे। प्रतीति ने उन्हें कमल के पत्ते पर रखकर लहरतारा तालाब मे तैरा दिया था और नीरू नाम के जुलाहा दम्पत्ति जब तक आकर उस बालक को नहीं ले गये, तब तक प्रतीति उनकी रक्षा करती रही। कुछ लोगो का यह भी मत है कि कबीर साहब जन्म से ही मुसलमान थे। बडे होने पर, उन्होंने स्वामी रामानदजी के प्रभाव मे आकर हिंदू धर्म की बातें जानी।

ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार पहर रात रहते ही कबीर साहब पचगंगा घाट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गये। वहां से रामानंदजी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। स्वामी रामानंदजी का पैर कबीर साहब के ऊपर पड़ गया। रामानंदजी उसी समय झट राम राम कह उठे। कबीर साहब ने इस ही दीक्षा प्राप्त गुरु-मंत्र मान लिया। वह स्वामी रामानंदजी को अपना गुरु कहने लगे। स्वयं कबीर साहब के शब्द हैं —

कासी में हम प्रकट भये हैं, रामानंद चेताये।

मुसलमान कबीर-पंथियों की मान्यता है कि कबीर साहब ने प्रसिद्ध सूफी मुसलमान फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। परंतु कबीर साहब ने शेख तकी का नाम उतने आदर से नहीं लिया है, जितना स्वामी रामानंदजी का। इनके सिवा कबीर साहब ने पीर पीताम्बर का नाम भी विशेष आदर से लिया है। इन बातों से यही सिद्ध होता है कि कबीर साहब ने हिंदू मुसलमान का भेदभाव मिटाकर हिंदू भक्तों तथा मुस्लिम फकीरों का सत्संग किया और उनसे जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हुआ, उसे हृदयंगम किया। कबीर साहब को पढ़ने लिखने का सुयोग्य अवसर नहीं मिला। फिर भी उन्होंने सत्संग और देशाटन पर्याप्त रूप में करके ज्ञान और व्यावहारिक अनुभव बहुत ठोस और विस्तृत रूप में प्राप्त किया।

कबीर ने अपने बारे में कहा —

कासी का मैं बासी बामन, नाम मेरा परबीना।
एक बार हरिनाम बिसारा, पकरि जोलाहा कीना।।
भाई मेरे कौन बिनेगो ताना।

कबीर साहब अपने जुलाहेपन के लिए किसी प्रकार से लज्जित न थे। उन्होंने डंके की चोट पर कहा है —

तू बामन मैं कासी का जुलाहा, बूझो मोर गियाना।

सम्भव है जुलाहेपन के हीन भाव ने उनको ज्ञान की ओर प्रवृत्त किया हो। जाति के हीनताभाव को वह ज्ञान से संतुलित करना चाहते थे। जुलाहा जाति वामपंथी योगियों के शिष्य परम्परा में थी। बंगाल और विहार के धुनिया, जो पीछे मुसलमान हो जाने के कारण जुलाहे कहलाने लगे, योगमत के मानने वाले हैं। वे 'जुगी' कहलाते हैं और योग का ज्ञान उनकी पैतृक परम्परा में आता है। उत्तर प्रदेश में भी ऐसे जुलाहे हुये। कबीर साहब सम्भव उन्हीं में से थे। इस मत की पुष्टि में इतनी बात कही जा सकती है कि असम में गोरखनाथ को भी जुलाहा मानते हैं।

कबीर साहब गृहस्थाश्रम सेवी थे। प्रसिद्ध है कि उनकी स्त्री का नाम लोई था। जनश्रुति के अनुसार कबीर साहब का एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्र का नाम कमाल था और पुत्री का नाम कमाली। इस छोटे से परिवार के पालन के लिए कबीर साहब को अपने करघे पर कठिन परिश्रम करना पड़ता था। यद्यपि कबीर साहब ने नारी की निंदा की है तथापि विवाह अवश्य किया है। उन्होंने अपनी पत्नी को संबोधित कर कई पद लिखे हैं—'कहत कबीर सुनहु रे लोई, हरि बिन राखत हमें न कोई।'

विवाह का स्पष्ट उल्लेख कबीरजी ने दिया है —

नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार।
जब जाना तब परिहारी, नारी बड़ा विकार॥

कबीर की मृत्यु के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है —

संवत् पन्द्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन॥

साधारणतया लोग काशी में शरीर त्याग को महत्व देते हैं किंतु कबीर साहब ऐसी स्वतंत्र प्रकृति के थे कि वह ऐसा सस्ता मोक्ष नहीं चाहते थे। यदि ईश्वर की उन पर कृपा है, तो सभी स्थानों पर (मगहर में भी) उनका मोक्ष होगा। तभी तो उन्होंने कहा है —

मगहर मरै मरन नहिं पावै, अन्त मरै तो राम लेजावै।
मगहर मरै सो गदहा होई, भवत परतीत, राम सो खोई॥
क्या काशी क्या ऊसर मगहर, राम हृदय बस मोरा।
जो काशी तन तजै कबीरा, राम कौन निहोरा॥

वृद्धावस्था में कबीर साहब के लिए काशी में रहना लोगों ने दूभर कर दिया था। यश और कीर्ति की उन पर वृष्टि सी होने लगी। कबीर साहब इससे तंग आकर मगहर चले गये। 119 वर्ष की अवस्था में मगहर में ही उन्होंने शरीर छोड़ा।

कबीर साहब बड़े संतोषी तथा स्वतंत्र विचार के थे। वह इतना ही धन चाहते थे कि खुद खा सकें और द्वार से साधु भूखा न जाये। संतोष ही उनके स्वाभिमान का कारण था। परमार्थ के लिए वह स्वाभिमान को भी बलिदान कर सकते थे —

मर जाऊं मागूं नहीं अपने तन के काज।
परमारथ के कारनें मोहि न आवै लाज॥

साधु सेवा और परमार्थ की भावना तो उनकी अत्युच्च थी। वह घर में रह कर भी फकीर थे।

कबीर साहब का मुख्य ग्रंथ बीजक है। इसके अतिरिक्त भी कबीर साहब 57 या 61 ग्रंथों के प्रणेता थे, ऐसा अनुमान है। सिखों के आदि गुरु ग्रंथ साहब में भी कबीर साहब की रचना है। संत शिरोमणि कबीर साहब का नाम उनकी सरलता और साधुता के लिए संसार में सदा अमर रहेगा। उनकी कुछ वाणियां इस प्रकार हैं —

(1)

या जग अंधा, मैं केहि समुझावों ॥टेक॥
इक दुइ होय उन्हें समुझावौं, सबहि भुलानां पेट के धन्धा ॥
पानी कै घोड़ा पवन असवर वा, ढरकि परै जस ओस के बुन्दा।
गहिरी नदिया अगम बह धरवा, खेवनहारा के पड़िगा फन्दा ॥
घर की वस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूढ़त अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिया बंदा ॥
कहै कबीर सुनो भई साधो, इक दिन जाय लगोटी झार बन्दा।

(2)

सन्तो, राह दोऊ हम दीठा ॥टेक॥
हिन्दू तुरक हटी नहिं मानैं, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादसि साधें, दूध सिंघाड़ा सेती।
अन्न को त्यागें मन नहिं हटके, पारन करें सगोती ॥
रोजा तुरक नमाज गुजारें, बिसमिल बांग पुकारें।
उनकी भिस्त कहां से होइ है, सांझे मुरगी मारें ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनो घट सो त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारें, आग दुनों घर लागी ॥
हिन्दू तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो संतो, राम कहेउ खुदाई ॥

(3)

झीनी-झीनी बीनी चदरिया ।।टेक।।
काहे क ताना, काहे क भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।।
ईड़ा पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ।
आठ कवल दल चरखा डोले, पांच तत्त गुन तीनी चदरिया ।।
साईं को सियत मास दस लागे, ठोक-ठोक के बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नरमुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मली कीनी चदरिया ।।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों-की त्यों धर दीनी चदरिया ।

(4)

साधो, ई मुरदन क गाव ।।टेक।।
पीर मरे, पगबर मरिगें, मरिगें जिंदा जोगी ।।
राजा मरिगे परजा मरिगे, मरिगें बैद ओ रोगी ।
चन्दो मरि ह सुरजो मरि ह, मरि ह धरति अकासा ।।
चौदह भुवन चौधरी मरि है, इनहुन के का आसा ।
नोहू मरिगे दसहू मरिगे, मरिगे सहस अठासी ।।
ततीस कोटी देवता मरिगे, मरिगे काल की फांसी ।
नाम अनाम रहे जो सदा ही, दूजा तत्त न होई ।।
कह कबीर सुनो भई साधो, भटकि मर मति कोई ।

गायकाचार्य मियां तानसेन

संगीत सम्राट तानसेन का नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है। आज से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व भारतीय संगीत के क्षितिज पर यह अनुपम नक्षत्र उदित हुआ। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फजल ने कहा था "पिछले एक हजार वर्षों में ऐसा गायक नहीं हुआ।" आज भी इस बात को सब एक स्वर से स्वीकार करते हैं। तानसेन ने संगीत क्षेत्र में ग्वालियर को सांस्कृतिक स्थल का गौरव प्रदान किया। हिन्दी कवि के रूप में भी तानसेन का महत्व कम नहीं है। संगीत और गायन के लिए तो यह नाम आज तक अद्वितीय है। कला का आदर्श हमारे देश में बहुत ऊंचा माना गया है। कलोपासक हमारे ऋषि मुनि देवतुल्य माने जाते थे। कला के माध्यम से ईश्वरोपासना करके हम मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

तानसेन संगीत के साथ इतने समरस हो चुके थे कि आज भी संगीत को तानसेन के व्यक्तित्व से बिल्कुल भिन्न नहीं किया जा सकता। श्री कृष्ण के अनन्य भक्त सूरदासजी की तानसेन संबंधी निम्न उक्ति विचारणीय है —

भलो भयो विधि ना दिये शेषनाग के कान।
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान।।

ग्वालियर की पौराणिक तपोभूमि पर उन दिनों संगीतामृतनाद ध्वनि निरंतर गूंजती थी। संगीत की शिक्षा दीक्षा का कार्य यहां होता था और यहां के संगीताचार्य संगीत प्रचार हेतु अन्यान्य स्थानों पर जाते थे। इसी कारण ग्वालियर परम्परागत संगीत का प्रमुख केन्द्र माना जाता रहा है। तानसेन का जन्म ग्वालियर के निकट बेहट ग्राम में संवत् 1563 के लगभग हुआ था। वह हिन्दू कुल में और ब्राह्मण वंश में पैदा हुए थे। उनके पिता का नाम मकरंद पांडे था। तानसेन का मूल नाम क्या था यह निश्चयपूर्वक नहीं बतलाया जा सकता, किंतु किंवदंती के अनुसार तनू, त्रिलोचन, तनसुख अथवा रामतनु कहा जाता है। तानसेन उनका नाम नहीं था, यह उनकी उपाधि थी, जो उन्हें बांधवगढ़ के राजा रामचन्द्र से प्राप्त हुई थी। यह उपाधि इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसने मूल नाम को ही छिपा दिया। भगवान शंकर की उपासना के फलस्वरूप मकरंद पांडे को तानसेन जैसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी। पांच साल तक तानसेन मूक रहे, उसके बाद महेश्वर की कृपा से उनका कंठ खुला।

तानसेन के समय ग्वालियर पर कलाप्रिय नरेश मानसिंह का शासन था। मानसिंह तोमर के प्रोत्साहन से ग्वालियर संगीत कला का विख्यात केंद्र बन गया था, जहां पर बैजू, बक्सू, कर्ण और महमूद जैसे महान संगीताचार्य और गायकगण एकत्र थे। उनके सहयोग से ही संगीत की अनेकों विधाओं का आविष्कार और प्रचार प्रसार हुआ था। तानसेन की संगीत कला मानसिंह तोमर द्वारा स्थापित संगीत विद्यालय में हुई। तानसेन को कलावन्त की उपाधि मिली थी। यह उपाधि महाराजा मानसिंह तोमर, द्वारा स्थापित संगीत विद्यालय के छात्र के रूप में उच्च कलाकार के सम्मान में उनके पुत्र विक्रमादित्य तोमर द्वारा, उन्हें दी गई थी। फाजलअली कव्वाल कृत "कुल्लियात ग्वालियर" में इसका उल्लेख है, जिसका उद्धरण आचार्य बृहस्पति ने अपने लेखों में दिया है।

बाल्यावस्था से ही संगीत और वैराग्य के प्रति तानसेन की निष्ठा थी। एक दिन वह गेरुआ वस्त्र धारण कर, हाथ में माला लेकर ईश्वर का नाम लेते हुए घर से निकल पड़े। उस समय रीवा में महाराज रामचन्द्र राज करते थे। प्रातःकाल का समय था। वह मधुर कण्ठ से गीत गाते हुए राजपथ पर विचरण कर रहे थे। राजा ने उन्हें अपने प्रासाद में बुलाकर स्वागत किया। तभी से वह रीवा में राजा रामचन्द्र के साथ रहने लगे। धीरे धीरे उनके संगीत-माधुर्य की ख्याति भारत के कोने-कोने में फैल गयी।

तानसेन के संगीतकार बनने में वृन्दावन निवासी हरिदासजी महाराज का बड़ा हाथ था। कहा जाता है कि तानसेन की उम्र अभी केवल दस वर्ष ही की थी कि, उन्हें एक बाग की रखवाली पर नियुक्त किया गया। उस बाग में हमेशा चोरी होती थी। तानसेन को चोरों को रोकने का कोई उपाय नहीं सूझा। तानसेन ने चोरों को डराने के लिए शेर के गर्जन की नकल शुरू कर दी। यह नकल ऐसी प्रतीत होने लगी जैसा सही रूप में शेर आया हो। इससे चोरों का बाग में आना बन्द हुआ। संयोगवश एक दिन हरिदासजी उधर से जा रहे थे कि उन्होंने शेर की आवाज सुनी। जब वह पास आये तो देखा एक दस वर्षीय बालक के मुंह से यह ध्वनि निकल रही थी। हरिदासजी के मन में आया कि इस बालक को अपने पास रखना चाहिए। मकरन्द पांडे से हरिदासजी तानसेन को मांगकर ले गये और वहां संगीत की शिक्षा दी। तानसेन हरिदासजी के शिष्य बने और वृन्दावन में उनकी कला परिपक्व हुई।

2—303 M of I & B (N D)/83

तानसेन ने प्रारम्भ में बेहट ग्राम में बकरिया चराने का काम किया। तानसेन के उपास्यदेव वनखण्डी म मिट्टी के महादेव थे। इनका नियम था कि रोजाना बकरी के दूध की धार शिवलिंग पर चढाई जाए। एक बार वह बीमार हुए, फिर भी इन्होंने अपना नियम नहीं तोडा। वह बकरी को कन्धे पर लेकर वर्षा म निकल पडे। नदी में बाढ़ आयी थी, फिर भी नदी पार कर गये और जाकर शिवलिंग पर बकरी के थन निचोड दिए। शिवशकर प्रसन्न हुए। जोर की आवाज हुई। तानसेन ने समझा कि शिवजी ने मुझे वरदान मागने को कहा है। इन्होंने कण्ठ स्वर के बारे में प्रार्थना की। महादेव से इन्हें स्वर मिला। तानसेन ने राग अलापा। खडी मिट्टी की दीवार डोल उठी। यह झुकी हुई दीवार आज भी बेहट ग्राम में दिखाई देती है।

एक बार राजा रामचद्र बघेला शिवपूजन कर रहे थे। तानसेन न उसी समय शिव भक्ति पद गाने शुरू कर दिए। इसी समय रीवा के शिवमदिर का दरवाजा घूम गया। बघेला राजा ने इस चमत्कार से प्रभावित होकर मदिर की भली प्रकार प्रतिष्ठा करवाई और तानसेन को सम्मानपूर्वक आश्रय दिया।

गुजरात यात्रा में तानसेन का पता चला कि वहा की नतकिया नाक में नथ पहनकर गाते गाते कुए में नथ नवाती हैं और तब उनके स्वरालाप से कुए का पानी ऊपर चढता है। तानसेन न उन कुओ पर पनिहारिनो की खाली गागरो को स्वरालाप के चमत्कार से जल से भर दिया। मार्ग में पाषाण पिघल गया। तानसेन ने उस पिघले हुए पत्थर के स्थान पर मजीरे छोड दी। उस स्थान पर मजीरो की मुद्रा अंकित हुई।

कहा जाता है कि तानसेन के दीपक राग म वह शक्ति थी कि दीपक स्वय जल उठते थे और उनका मल्हार राग सुनकर बादल घिर आते थे। दीपक राग आलाप करने पर वन में दावानल दहक उठती थी। अकबर भी दीपक राग सुनने का शौकीन था। दीपक राग सुनाने म वे पीडा अनुभव करते थे। इसी प्रवास काल में तोम और ताना नामक पनिहारियो ने मेघमल्हार आलाप कर बादलो से पानी बरसा दिया था। तानसेन की व्यथा शात हुई। तानसेन न उन्हें अपने साथ चलने का आग्रह किया। उन्होंने अपने घर वालो से अनुमति मागी, इस पर उन्हें जीवन से ही हाथ धोना पडा। इस घटना का तानसेन के जीवन पर बडा असर पडा।

कुछ विद्वानों का मत है कि मेघ मल्हार राग तानसेन ने अपनी कन्या सरस्वती और बाबा हरिदासजी की शिष्या रूपवती को सिखाया था, जिन्होंने मेघवृष्टि कर तानसेन के शरीर की दाह को शांत किया था।

तानसेन की प्रसिद्धि सम्राट अकबर के कानों तक पहुंची। अकबर ने जलालुद्दीन कुर्ची को आगरा भेजा, जो अकबर के यहां ललित कलाओं का संरक्षक और संगीत का बड़ा पारखी था। वह रामतनु (तानसेन) के संगीत से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उन्हें दो लाख रुपये का इनाम और तानसेन की उपाधि दी। इसके बाद तानसेन की गणना अकबर के नवरत्नों में होने लगी। यह भी कहा जाता है कि अकबर रोजाना कुछ समय निकालकर तानसेन का संगीत सुना करते थे। अबुल फजल ने लिखा है कि 236 संगीतकारों को अकबर का संरक्षण प्राप्त था, फिर भी इनमें ज्यादा प्रसिद्धि और लोकप्रियता तानसेन के हिस्से में थी। तानसेन ने जहां संगीत के क्षेत्र में ग्वालियर को गौरव सौंपा, वहीं हिंदी कवि के रूप में भी उसका महत्व कम नहीं। चार शताब्दियों पूर्व संगीत सम्राट तानसेन ने जिस स्वर साधना को साकार कर अपने चरमोत्कृष्ट रूप में प्रतिष्ठित किया उसकी अनुगूंज आज भी कलाकारों के संगीत में प्रतिध्वनित होती है।

किंवदंती के अनुसार तानसेन के विषय में एक शाहजादी से प्रेम और फिर उसके वरण करने के लिए धर्म परिवर्तन की घटना प्रचलित है। साथ ही अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा से प्रेम और विवाह का उल्लेख मिलता है। तानसेन के वंशज भी मुसलमान बन गये। इस कलाकार का धर्म परिवर्तन प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार किया है। मियां तानसेन अकबर के दरबार में रहते हुए भी एक सच्चे वैष्णव के रूप में रहे। डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने अपने स्वीकृत शोधग्रंथ 'अकबरी दरबार के कवि' में तानसेन के मुसलमान वंशजों का रामपुर राजदरबार में आश्रय में जाना बताया है। इससे यही सिद्ध होता है कि तानसेन इस्लाम धर्म के निकट थे। वैसे तानसेन सभी धर्मों को समान भाव से देखते थे। वैसे भी अकबर के दरबारियों ने अकबर का दीन-ए-इलाही मत स्वीकार किया था।

सम्राट अकबर लाख चेष्टा करने पर भी जब स्वामी हरिदासजी को अपने समक्ष गायन के लिए राजी नहीं कर सके तो, वह स्वयं तानसेन के साथ वृंदावन गए। वहां पहुंचे तानसेन ने हरिदासजी के समक्ष गायन किया और जानबूझकर अशुद्ध

रूप में गाया, जिससे उसे शुद्ध करने के लिए हरिदासजी को गाना पड़ा। इसमें अकबर को हरिदासजी का गायन सुनने को मिला। अकबर हरिदास भेंट की यह किंवदंती अपेक्षाकृत प्रमाणित है।

अकबर की राजसभा में तानसेन एक भगवदभक्ति सम्बन्धी पद विशेष रूप से गाया करते थे। कई बार उनके साथ अकबर ने ब्रज आदि भक्ति क्षेत्रों में आकर भगवान के लीला गायकों का संगीत सुना था। मेवाड़ की भक्तिमती मीराबाई का भी अकबर ने तानसेन के साथ दर्शन किया था।

तानसेन की भक्त सूरदासजी से घनी मित्रता थी। दोनों एक दूसरे की हृदय से सराहना करते थे। जीवन के अंतिम समय में तानसेन ने गोसाईं विट्ठलनाथजी महाराज से दीक्षा ले ली थी। वल्लभ सम्प्रदायी वार्ता साहित्य में एक ऐसे प्रसंग का उल्लेख मिलता है। एक बार तानसेन गोसाइं विट्ठलनाथजी से मिलने गये। उस समय गोविन्द स्वामी संगीतज्ञ आदि गायक उपस्थित थे। गोसाईंजी ने उनका गीत सुनकर दस हजार रुपये की थैली पुरस्कार में दी, साथ ही साथ एक कौड़ी भी रख दी। कारण पूछने पर उन्होंने तानसेन से कहा कि तुम बादशाह के कलाकार हो इसलिए उचित पुरस्कार देना आवश्यक था। पर हमारे श्रीनाथजी और नवनीत प्रिय के गायकों के सामने तुम्हारा गीत कौड़ी का है। गोसाइजी की आज्ञा से तानसेन के सामने गोविन्द दास ने विष्णुपद गाया। तानसेन ने गोसाइजी से ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान लिया। अब वह प्रायः ब्रज में ही रहा करते थे।

तानसेन संगीत साधक तथा भक्त थे। संगीत से ही भगवान श्रीकृष्ण का आवाहन करके हृदय का विरह ताप शीतल किया करते थे। तानसेन की मृत्यु संवत् 1589 में आगरा में हुई। मृत्यु से पूर्व, उन्होंने ग्वालियर जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु बीमारी की हालत में उन्हें ग्वालियर न भेजा जा सका। अकबर ने उनकी मृत्यु के बाद उनकी इच्छा का आदर करते हुए उनका शव ग्वालियर भेजा। शाह मुहम्मद गौस के मकबरे के पास ही उन्हें समाधिस्थ किया गया।

तानसेन का मजार सादा बनाया गया है। इतिहासकार डॉ० अशीर्वादीलाल और श्री स्मिथ तानसेन के शव को दफनाया जाना ही मानते हैं। साथ ही श्री स्मिथ ने अबुल फजल के 'अकबरनामा' का अनुवाद प्रस्तुत करते हुए "अकबर दी ग्रेट मुगल" में लिखा है कि तानसेन मुसलमान हो गया था, उसे मिर्जा की उपाधि दी गई थी। तानसेन के चार पुत्र तथा एक पुत्री थी। पुत्रों में तानतरंग खां, सुरतसेन और

बिलासखा के नाम प्रसिद्ध है । इन इतिहासकारो के कथनो की उपस्थिति से यह प्रमाणित हो जाता है कि तानसेन का शव ग्वालियर में मुहम्मद गौस के मकबरे के पास ही दफनाया गया और उस पर भव्य समाधि अकबर ने बनवा दी थी । यह स्थल आज भी भारत के सगीतज्ञो के लिए महान तीर्थ स्थल बना हुआ है ।

तानसेन के पद

(1)

ज शारदा भवानो भारती विद्यादानी महावाकवानी तोहि ध्याव ।
सुर नर मुनि ज्ञानि सोहि कू त्रिभुवन जानि को जानो मन इच्छा
सोई सोई पुजावे ।।
मगला सुबुद्धि दानी ज्ञान की निधानी बीणा पुस्तक धारनी
प्रथम तोहि गाव ।
तानसेन तेरी अस्तुत कहा लो सप्त स्वर तीन ग्राम राग रग लय आवे ।।

(2)

अब म राम राम कह टेरो ।
मेरे मन लागो उनहि सीतापति पद हेरो ।।ध्रु।।
चरण सरोज श्रवण मन मेरो, धुज अकुश सूल केरो ।
तानसेन प्रभु तुम हो नायक इन तरवन पर फेरो ।।

(3)

धन धन मेरे भाग, भोर भए आए लालन ।
सब निस कहा जागे प्यार । स्थायी ।।
आलसवन्त जमुहात जात, मलिन गात ।
साची कहो बात, नन्द दुलारे ।। अन्तरा ।।
लटपटी पाग, खुल रही पेचन सो ।
अधन पीक लीक धारे ।। आभोग ।।
तानसेन के प्रभु तुम बड़ो नायक ।
साच बोल साम के तिहारे ।। आभोग ।।

(4)

तेरी गत आगत मो पे बरनी ना जात ।
नारायन निरंजन निराकार परमेश्वर ।।
सप्तदीप शिवशंकर ।। स्थायी ।।
शिवशंकर अवतार को लेवत ।।
हरत भरत चित देखत ।
तेरी बिध मन सबहीं ।।
सकल स्त्री सुख चहीं नारी नर ।। अन्तरा ।।
तू ही जल थल, तू ही पसु पंछी ।।
तुही पवन पानी, तुही धरती अंबर ।
तुही चन्द्र, तुही सूज, बसो जो जल थल ।।
तानसेन के प्राण उड़त ।
जानत हू सब घर घर ।। आभोग ।।

(5)

चरन सरन ब्रजराज कुंवर के ।
हम विधि अविधि कछु नहिं समुझत, रहत भरोसे मुरलीधर के ।।
रहत आसरे ब्रज मंडल में, भुजा छांह तरुवर गिरधर के ।
तानसेन के प्रभु सुखदायक, हाथ बिकाने हम राधावर के ।।

(6)

केते दिन गए री अलेखें आली, हरि बिनु देखें ।
उरमु तपइ याके नल सिख करन, नन तपें बिनु देखें ।।
पतियां न पठावत है, आपु न आवत है, रही री हौं धोखें ।
तानसेन के प्रभु सब सुखदायक, जोवन जात परेखें ।।

(7)

या हो त घर-घर झगरयो, पसारयो ।
कसे जात निवार यो ॥
वे सब घेरो करत ह तेरो ।
रस औ अनरस कौन मन पढ़ि डारयो ॥
मुरली बजाइ करी सब बौरी ।
लाज गई अपनो पति बिसार्‌यो ॥
तानसेन प्रभु ,सोई करो ।
जिहि व सब सुख पावें, त जीत्यो जग हार्‌यो ॥

(8)

अब हो डारव रे,इडुरिया मेरी पचरग पाट की ।
हा हा करत तोरे पइया परत हौं ॥
यह लालच मोहि गोकुल नगर हाट की ।
मेरे सग की दूरि डगरि गई ।
हौं जकरी इहि घाट की ॥
तानसेन के प्रभु झगरोही ठायो ।
हसत लुगाई बाट की ॥

रसखान

जिस प्रकार भारत समूचे विश्व में आध्यात्मिक गुरु के रूप में प्रसिद्ध रहा है, उसी प्रकार भारतवर्ष में ब्रज भूमि भक्ति व आध्यात्मवाद का केंद्र मानी जाती रही है। पुराणों में ब्रज भूमि का भारी महत्व बताया गया है। "ब्रज रज तजि अनत न जाऊं" अर्थात् मैं ब्रज की पावन रज को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जा सकता। जहां तक ब्रज भूमि की सीमा है तथा उसमें जो नदी, वन, उपवन, गिरी आदि हैं, उनके प्रति श्रद्धा भक्ति रखने और उन्हें पूज्य मानने से ही मानव का कल्याण है। ब्रज भूमि को भक्ति व मुक्ति भूमि बताते हैं। अस्सी कोस के ब्रजमंडल में स्थित किसी भी कुंड तथा नदी में स्नान करने तथा उसके किनारे भक्ति करने से श्री विष्णु भक्ति सुगमता से प्राप्त होती है। उस अस्सी कोस के अंतर्गत ब्रज क्षेत्र में रहने वाले मृग, पक्षी, कीट, पतंग, जीव आदि ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि देवों से परिपूजित है। उन समस्त ब्रजवासियों के विशुद्ध प्रेम-सागर में मग्न होकर श्रीकृष्ण सदा विचरण करते रहते हैं। ब्रज भूमि की ऐसी महिमा ब्रह्मपुराण में गाई गई है।

भगवान श्रीकृष्ण के भावुक भक्तों में अनेक ऐसे अहिंदू भक्तों का भी अग्रणी स्थान रहा है, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही श्रीकृष्ण भक्ति में लगाकर भक्ति के इतिहास में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़े हैं। ऐसे भक्तों में रसखान भी हैं। रसखान का सम्बन्ध बादशाही वंश से था। वह दिल्ली के एक समृद्धशाली पठान थे। उनका जन्म लगभग संवत 1640 विक्रमी में हुआ था। उनकी परमोत्कृष्ट विशेषता यह थी कि वह अपने लौकिक प्रेम को भगवत्प्रेम में रूपान्तरित कर भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त बन गये थे।

एक समय की बात है। भागवत की कथा चल रही थी। उच्च सिंहासन पर भगवान श्रीकृष्ण का चित्र रखा हुआ था। उस चित्र को देखने से रसखान के मन में भगवान के दर्शन की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। उन्होंने कथावाचक से भगवान श्रीकृष्ण के स्थान का पता पूछा और ब्रज की ओर चल पड़े। मन में अनंत भावनाएं थीं। ब्रज रज का मस्तक से स्पर्श, भगवती कालिन्दी के जल की शीतल उन्मत्त समीर, मदमस्त कम्पन की अनुभूति, श्याम-तमाल से अच्छी लताओं की हरियाली का नयनों से आलोकन होते ही वह अपनी सुध बुध

खो बैठे। ससार का भान सदा क लिए समाप्त हो उनके मे प्रति पूर्णरूपेण विराग हो गया। मन भगवान श्रीकृष्ण के चरणो में रम गया। उन्होने वृन्दावन के भक्तिके ऐश्वय की स्तुति की। उसक जड जीव चेतन और जगम मे आत्मानुभूति की आत्मीयता देखी। पहाड, नदी और विहगा से अपने जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध जोडा और भावविभोर होकर गा उठे —

> या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहू पुर का तजि डारों।
> आठहु सिद्धि नवौ निधि कौं सुख, नन्द की गाय चराय बिसारौं।।
> इन नयनन्हि 'रसखान' सदा, ब्रज के बन बाग तडाग निहारौं।
> कोटिन्ह हों कल्धौत के धाम, करील की कुजन ऊपर वारौं।।

कैसा समपण भाव है? प्रेम सुधा का निरन्तर पान करते हुए वह ब्रज की शोभा देख रहे थे। ब्रज भूमि के दशन स रसखान जैसे प्रेमी सत का जीवन सफल हो गया था। भगवान के प्रेमरूप बन्धन से रसखान सदा के लिए बध गये थे।

एक दिन का प्रसग है। वह गोवधन पर श्रीनाथजी के दशन के लिए जा रहे थे। द्वारपाल ने देखा कि एक मुसलमान हिंदु मदिर मे जा रहा है। अब मन्दिर भ्रष्ट हो जाएगा। छूआछूत के रोग ने उस मदिर के सभी पुजारियो व सेवकों को ग्रस रखा था। उन्हें रसखान की अनन्य भक्ति की कल्पना न थी। भक्ति की मस्ती तो भक्त ही जानते हैं। द्वारपाल न धक्के देकर रसखान को मदिर क आगन स निकाल दिया। कहते है, इससे भगवान् के हृदय को ठेस पहुची। श्रीनाथजी के नेत्र अगारे की तरह लाल हुए और इधर रसखान की स्थिति विचित्र हो गई। उन्होने अन्न-जल का त्याग कर दिया। भगवान क प्रति उन्हें पूरा भरोसा था। तीन दिन बीत गए। भक्त के प्राण कलप रहे थे। भगवान की अनन्य भावना के अनुसार रसखान पडे पडे सोच रहे थे —

> देस बिदेस के देखे नरेसन, रीझि को कोउ न बूझ करैगो।
> तातें तिन्हें तजि जान गिरयो, गुन सौगुन औगुन गाठि परैगो।।
> बांसुरीवारो बडो रिझवार है, स्याम जो नेंकु सुढार ढरैगो।
> लाड़िलौ छैल वही तो अहीर कौ, पीर हमारे हियें की हरैगो।।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कितनी अनन्य श्रद्धा थी। हृदय की वेदना तो असह्य थी। आखिर नन्द-नन्दन भगवान श्रीकृष्ण ने साक्षात दशन दिए। उसक बाद गोसाई विठ्ठलनाथजी ने उनका गोविन्दकुड में स्नान कराकर दीक्षा दी। रसखान

पूरे "रसखानि" हो गए। भगवान् के प्रति समर्पण के भाव का पूर्णरूप से उदय हुआ। रसखान की काव्य-साधना पूरी हुई। वह आजीवन ब्रज भूमि मे रहे। भगवान की लीला काव्य मे गाते रहे और ब्रजमडल म विचरते रहे। वह एक मात्र भगवान् के थे और सारे ब्रज में स्नेही, सखा, सम्बन्धी केवल भगवान ही उनके थे। पैंतालीस वर्ष की अवस्था मे उन्होने अपनी देह लीला समाप्त की। भगवान् का अंतिम समय मे भी उन्हे दर्शन हुआ। भगवान के सामने ही उनके प्राण चल बसे। मथुरा महावन म यमुनातट पर रमण रेती मे निर्मित इस महान भक्त की समाधि आज भी श्रद्धा का केन्द्र है। उनकी इच्छा ब्रजमडल की रज म ही रम जाने की थी। भगवान के सामने, उन्होने यही कामना व्यक्त की थी —

मानुस हौं तो वही 'रसखान' बसौं ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरौ, चरौ नित नन्द की धेनु मझारन।।
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिंदी कूल कदब की डारन।।

भक्त के हृदय की उदात्त भावना का कितना सुदर वर्णन है। प्रेम के साम्राज्य मे भगवान की कृपा का दर्शन रसखान जैसे भक्तो के ही सौभाग्य की बात है।

रसखान की वाणी

(1)

बैन वही उनको गुन गाइ, और कान वही उन बैन सो मानो।
हाथ वही उन गात सरै, अरु पाइ वही जु वही अनुजानो।।
जान वही उन प्रान के सग, औ मान वही जु करै मनमानो।
त्यौं रसखानि वही रसखानि, जु है रसखानि, सो है रसखानो।।

(2)

द्रौपदी औ गनिका, गज, गीध, अजामिल सो कियौं सो न निहारो।
गौतम गेहिनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हरयो दुख भारो।।
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करि है रवि नन्द विचारो।
कौन की सक परी है जु, माखन चाखनहारो है राखनहारो।।

(3)

जा दिन तें निरख्यो नँद-नंदन, कानि तजी घर बन्धन छूटयो ।
चारु बिलोकनि की निसि मार, सँभार गयी मन मार ने लूटयो ॥
सागर को सरिता जिमि धावति, रोकि रहे कुल को पुल टूटयो ।
मत्त भयो मन संग फिरै, रसखानि सुरूप सुधा रस घूटयो ॥

(4)

कानन दै अँगुरी रहिबो, जबहीं मुरली धुनि मन्द बजैहै ।
मोहिनी तानन सों रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
माई री, वा मुख की मुसुकानि, सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै ॥

(5)

खंजन नैन फँसे पिंजरा छवि, नाहिं रहैं थिर कैसे हू माई ।
छूटि गयी कुल कानि सखी, रसखानि, लखी मुसुकानि सुहाई ॥
चित्र कढ़े से रहे मेरे नैन, न बैन कढ़े, मुख दीनी दुहाई ।
कैसी करौं, जित जाव अली, सब बोलि उठैं, यह बावरी आई ॥

(6)

गावैं गुनी, गनिका, गन्धर्व औ, सारद सेव सबै गुन गावैं ।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं ॥
जोगी, जती, तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावैं ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

(7)

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि, अनन्त, अखंड अछेद, अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्यास रटैं, पचि हार, तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

अमीर खुसरो

जनकवि के रूप में भारतीय इतिहास में अमीर खुसरो का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। फारसी में लिखनेवाले हिंदुस्तानी कवियों में अमीर खुसरो का स्थान सर्वोत्तम है। अमीर खुसरो फारसी के अत्यन्त विद्वान, कवि तथा लेखक थे। खुसरो विरक्त संत नहीं थे, अनुरक्त सदगृहस्थ थे। अपने समय के बड़े संतों के साथ रहकर उन्होंने आध्यात्मिक तत्वों का संधान किया था। धर्म और आध्यात्म उनकी चेतना के मूल विषय थे। संगीत, कविता, इतिहास, सूफीवाद, तत्वज्ञान आदि सभी विषयों को उनकी मेधा ने स्पर्श किया था। 'हफ्ते इकलीम' के रचयिता अमीन महमद राजी के वक्तव्य के मुताबिक अमीर खुसरो ने करीब 99 ग्रंथ लिखे हैं। कविता की पांच लाख पंक्तियां, उन्होंने बनाई थी।

अमीर खुसरो केवल संत कवि ही नहीं, बल्कि एक सदगृहस्थ, परोपकारी, सामाजिक व्यक्ति थे। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अमीर खुसरो की कविता की प्रशंसा करते हुए लिखा हैं वह "कवियों के राजकुमार" हैं। साथ ही खुसरो की प्रशंसा करते हुए वह लिखते हैं कि "खुसरो कवि ही नहीं योद्धा भी था और क्रियाशील पुरुष भी। उसने अनेक युद्धों में भाग लिया था, जिसका वर्णन अपने ग्रंथों में किया है।" इतना कहना पर्याप्त होगा कि वह एक प्रतिभावान् कवि और गायक था, जिसकी कल्पना की उड़ान भाषा के माध्यम से विषयों की विविधता से संपन्न है। जिस प्रकार चकित कर देने वाली सरलता और सौन्दर्य से वह मानवीय आवेग और संवेदों को तथा रागात्मक प्रवृत्तियों को वर्णित करते हैं तथा प्रेम और युद्ध की चित्रावली प्रस्तुत करते हैं, वह उसे तात्कालिक कवियों की पंक्ति में बैठाने में समर्थ है। कवि होने के साथ खुसरो संगीताचार्य भी थे, जैसा कि चौदहवीं शती के प्रसिद्ध गायक गोपाल नायक के साथ उसके वाद विवाद से ज्ञात होता है।"

अमीर खुसरो ने और कुछ भी अगर न किया होता तब भी सितार के जन्मदाता के रूप में भारतीय इतिहास में उनका नाम अमर है। भारतीय वीणा और ईरानी तम्बूरे का मिश्रण करके, उन्होंने एक वाद्य यंत्र बनाया, जिसे हम सितार के नाम से जानते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार प्राचीन मृदंग का आकार बदल कर, उन्होंने तबले को जन्म दिया। शास्त्रीय संगीत को "ख्याल" प्रकार तथा सुर

की गहराई न उभरता हुआ तराना उन्हीं के योगदान है। प्रत्येक सोनप्रिय कव्वाली के साथ भी कई बार इनका नाम जोड़ा जाता है।

अमीर खुसरो का वास्तविक नाम अबुल हसन यामीनुद्दीन खुसरो था। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले के पटियाली कस्बे में 1254 में एक तुर्क पिता तथा भारतीय मुस्लिम माता से हुआ था। अमीर खुसरो के पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन महमूद था, जो इल्तुतमिश अल्तमश से सम्बन्धित थे। अपनी प्रतिभा और पौरुष के कारण उन्होंने पदाप्त यश अर्जित किया था। बारहवीं शती में मंगोलों के आक्रमण में बगदाद जैसे शहर के नष्ट हो जाने पर इनके पिता आश्रयहीन होकर भारत चले आए और दिल्ली में बस गए। उस समय दिल्ली के तख्त पर शम्सुद्दीन अल्तमश था। अमीर सैफुद्दीन ने अपनी योग्यता के कारण दरबार में अपना उच्च स्थान बना लिया। अमीर खुसरो ने स्वयं अपने पिता की धर्मपरायणता, विद्वता, प्रतिभा, दयालुता, सज्जनता आदि का वर्णन किया है। अमीर खुसरो का जन्म भारत में हुआ। वह स्वयं भारत भूमि को अपनी मातृभूमि कहकर पुकारते थे। कुछ विद्वानों ने अमीर खुसरो के फारसी पांडित्य और ज्ञान के कारण इनका जन्म भारत के बाहर बगदाद में होना लिखा है, जो ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर असत्य सिद्ध होता है।

खुसरो कई दशकों तक दरबारों के सम्पर्क में रहे। लगभग पचास वर्षों तक, उन्होंने राजवंशों की उथल पुथल देखी। एक बार मंगोल हमलावर उन्हें कैदी बना कर ले गये थे। उनका जिंदा रह जाना भी एक संयोग की बात थी। शाही फौजों के साथ उन्हें बार-बार युद्ध के मोर्चे पर जाना पड़ता था। मामलूक वंश के बादशाह बलबन, खिलजी वंश के जलालुद्दीन, अलाउद्दीन और मुबारक तथा तुगलक वंश के गयासुद्दीन के समय में वे दरबारी रह चुके थे। उन अराजकता के दिनों में ऐसे विचित्र और सनकी राजाओं को खुश कर जीवित रहना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। अमीर खुसरो ने सुलतान गयासुद्दीन बलबन के शासन काल में अपनी प्रतिभा के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की। कहा जाता है कि बलबन शूरवीर होने के साथ साधु संतों और विद्वानों का सम्मान भी करता था। उस समय के अनेक उच्च कोटि के विद्वान व्यक्ति और ख्याति प्राप्त संत बलबन से संबंध रखते थे। बलबन का बेटा शाहजादा मुहम्मद काव्य प्रेमी था। अमीर खुसरो ने शाहजादा मुहम्मद की प्रशंसा में गीत लिखकर उसके काव्य प्रेम का परिचय दिया है।

अमीर खुसरो की प्रमुख पुस्तकों में से कुछेक नाम इस प्रकार हैं : किरानुस सादैन, आशिका उर्फ खिजरखान तथा देवलदेवी का रोमांस, नूह सिपिहर आदि। अमीर खुसरो की रचनाओं का सम्बन्ध अध्यात्म, प्रेम, शृंगार और चमत्कार से है। अमीर खुसरो की एक प्रसिद्ध कृति जिसे प्रेम कथा के साथ आध्यात्मिक रूपक भी कहा जाता है अलाउद्दीन के बेटे खिजर खां और देवल रानी की प्रेम कहानी है। खुसरो के अन्य उच्चकोटि के दीवानों भी इसी काल में लिखे गए, जो अपनी कीर्ति के कारण, उन्होंने इतिहास के क्षेत्र में भी प्रवेश किया था। नूह सिपिहर नामक मसनवी में उन्होंने तत्कालीन इतिहास की झांकी प्रस्तुत की। ये पुस्तक उन्होंने अपनी वृद्धावस्था में लिखी जिसमें उन्होंने हिंदुस्तान की तारीफ की है। भारत की धरती के प्रति कवि का प्रेम झलकता है। अमीर खुसरो फारसी के प्रकाण्ड पंडित और अपने समय के श्रेष्ठ कवि थे। उनका फारसी के साथ अरबी हिन्दी तुर्की आदि भाषाओं पर भी अधिकार था।

अमीर खुसरो ने बादशाहों के जीवन के उतार चढ़ाव देखे, जिनमें सबसे अधिक पाशविक दृश्य था पिता के द्वारा पुत्रों को अधिकार से वंचित करना और बादशाहों का अपनों ही तथा कथित विश्वासपात्रों द्वारा मारा जाना। अलाउद्दीन की जीवन लीला बीमारी से समाप्त हुई। कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि मलिक काफूर ने राज्याधिकार प्राप्त करके सारे परिवार का नाश किया और स्वयं भी वह मौत के घाट उतार दिया गया।

अमीर खुसरो ने अपना सम्बन्ध निजामुद्दीन औलिया से बनाए रखा और आध्यात्मिक जीवन में शांति प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहे। निजामुद्दीन औलिया अमीर खुसरो के गुरु थे। निजामुद्दीन औलिया स्वयं सूफी संत होने के कारण कभी किसी के दरबार में नहीं गये। अलाउद्दीन खिलजी ने एक बार मिलने की इच्छा प्रकट की तो औलिया ने जवाब भेजा "मेरे घर के दो दरवाजे हैं, सुलतान अगर एक से प्रवेश करेंगे तो मैं दूसरे से बाहर निकल जाऊंगा।"

दिल्ली की गद्दी पर गयासुद्दीन तुगलक बैठा जो इनके गुरु को नहीं चाहता था। उसने निजामुद्दीन औलिया से धन वापस मांगा, जो शाह खुसरो ने उन्हें सम्मानपूर्वक भेंट किया था। उन्होंने वह सारा धन खैरात कर दिया था। बादशाह ने संदेश भेजा कि मेरे दिल्ली पहुंचने के पहले निजामुद्दीन औलिया

दिल्ली छोडकर चले जाए। औलिया ने इसके उत्तर म कहा था। "हनोज दिल्ली दुर अस्त"—अभी दिल्ली बहुत दूर है। और, सचमुच बादशाह दिल्ली नही पहुच सका। खेमा टूटकर गिरने से उसकी रास्ते म ही मत्यु हो गई।

अमीर खुसरो के लिए दुखद प्रसग यह रहा कि वह बादशाह के साथ लखनौती गए हुए थे और उसकी अनुपस्थिति म ही गुरु निजामुद्दीन औलिया का 95 वष की आयु म देहावसान हो गया। गुरु के शोक समाचार से अमीर खुसरो को गहरा आघात पहुचा। अमीर खुसरो ने गुरु के निधन पर एक दोहा कहा, जो काफी प्रसिद्ध है। शोक विकल स्थिति म उनके मुख से दोहे के रूप म जो उद्गार निकले वह खडी बोली हिन्दी का प्रारम्भिक श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है —

गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहु देस ॥

अपने आध्यात्मिक गुरु निजामुद्दीन औलिया की मत्यु के बाद अमीर खुसरो का मन सासारिक प्रपचो से विरक्त हो गया था। अपने गुरु की मत्यु के कुछ ही महीने बाद सन 1325 म अमीर खुसरो का देहान्त हुआ। उनका पार्थिव शरीर निजामुद्दीन औलिया की समाधि के पास ही दफनाया गया। खुसरो के आध्यात्मिक काव्य का उदाहरण —

राग जौनपुरी—ताल दीपचदी

बहुत रही बाबुल घर दुलहिन, चल तेरे पी ने बुलाई।
बहुत खेल खेली सखियन सो, अत करी लरकाई ॥
न्हाय धोय के बस्तर पहिरे, सब ही सिगार बनाई।
बिदा करने को कुटुब सब आये, सिगरे लोग लुगाई ॥
चार कहारन डोली उठाई, सग पुरोहित नाई।
चले ही बनेगी होत कहा ह, नैनन नीर बहाई ॥
अत बिदा ले चलि ह दुलहिन, काहू की कछु न बसाई।
मौज खुशी सब देखत रह गये, मात पिता और भाई ॥

मोहि कौन संग लगन धराई, घर धन छोरि हूँ लुभाई ।
बिन मांगे मेरो मंगनो जो कीन्ही, पर घर की जो ठहराई ॥
अंगुरी पकरि मोरा पहुँचा भी पकरे, कंगना अंगूठी पहराई ।
नौशा के संग मोहि कर दीन्ही, लाज संकोच मिटाई ॥
सोना भी दीन्हा रूपा भी दीन्हा, बाबुल दिल दरियाई ।
गहेल गहली डोलति आंगन में, अचानक पकर बठाई ॥
बैठत मलमल कपरे पहनाये, केसर तिलक लगाई ।
'खुसरो' चली ससुरा री सजनी, संग नहीं कोई जाई ॥

रहीम

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में अब्दुर्रहीम खानखाना को लोग प्राय हिंदी कवि के रूप में जानते हैं। रहीम मध्ययुगीन भारत की एक अनुपम विभूति थे। कलम और तलवार दोनों पर उनका समान अधिकार था। अकबर के नवरत्नों में से वे एक प्रमुख रत्न थे। शासक सेनानायक तथा कूटनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने मुगल साम्राज्य को बहुमूल्य सेवाएं प्रदान कीं। रहीम के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी उनका हिन्दी, हिंदू और भारत के प्रति अनन्य प्रेम। उनकी हिंदी रचनाओं ने इन्हें अमर कर दिया। वे सही रूप में भारतीय थे। सभी धर्म, जाति और भाषा के प्रति उनका समान भाव था। डॉ० यदुनाथ सरकार के शब्दों में, 'रहीम के दरबार में दो विभिन्न सांस्कृतिक धाराओं, हिंदू तथा मुस्लिम फारसी तथा संस्कृत का उस समन्वित सरिता में मेल हुआ जिसका जल आज भी भारत दृश्य का अभिसिंचित कर रहा है भारतीय इतिहास में उनका स्थान इसलिए सुनिश्चित है कि [illegible] अकबर की सामान्य भारतीय जातियता की नीति का कम-से-कम सांस्कृतिक पक्ष में पूर्ण किया। रहीम स्वयं तो ज्ञानमान साहित्यकार थे ही [illegible] कवियों और विद्वानों के लिए विश्वविख्यात दाता भी।'

यदि रहीम बैरम खां खानाखाना के पुत्र थे। प्रामाणिक ग्रंथों [illegible] आधार पर इनका जन्म जमाल खां मेवाती की छोटी पुत्री [illegible] की राजधानी दिल्ली में विक्रम संवत 1613 को हुआ था। [illegible] शुक्ल तथा डॉ० रामकुमार वर्मा ने इनका जन्म [illegible] है। लेकिन स्वर्गीय पं० माया शंकर याज्ञिक ने मुंशी देवी[illegible] जन्म कुण्डली का विश्लेषण कर और उसे उद्धृत [illegible], सम्वत 1613) की प्रामाणिकता सिद्ध कर दी है।

रहीम के शैशव के प्रथम चार वर्ष [illegible] होनहार बालक थे। बैरम खां पूर्ण मुगल [illegible] गये थे। परन्तु भाग्य को यह बात मंजूर [illegible] वातावरण तैयार होने लगा। बैरम [illegible]

3—303 M of I & B (ND)/73

उन्होंने मक्का जाने की अनुमति मांगी। अकबर ने अनुमति देकर यात्रा के समुचित प्रबंध कर दिए। बैरम सपरिवार मक्का रवाना हुए। सम्वत 1617 में मक्का जाते समय गुजरात होकर जा रहे थे। उस समय गुजरात की राजधानी पाटन थी। वहां बैरम कुछ दिन रुक गए। एक दिन शाम के समय वहां के प्रसिद्ध सरोवर "सहस्त्रलिंग" में वह नौका विहार के लिए गए। जलविहार के बाद ज्यों ही वह नाव से उतर रहे थे कि मुबारक लोहानी नामक एक अफगान ने उनकी पीठ में छुरा मार कर उनका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार 4 वर्ष की अल्प आयु में ही इस प्रतिभावान कवि को अपने पिता की छत्रछाया से हाथ धोना पड़ा।

मासूम रहीम तथा उनकी विधवा मां के लिए यह समय अत्यन्त संकट का था। कुछ स्वामिनिष्ठ सरदार मुहम्मद अमीन दीवाना आदि साथ थे। वे इन्हें अहमदाबाद से आगरा ले आये। अकबर को बैरम की निर्मम हत्या का समाचार मिल चुका था। शिशु रहीम अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ। उसे देखते ही अकबर भाव विभोर हो उठा। उसे अपना फरजंद (पुत्र) घोषित कर उसका सारा दायित्व अपने ऊपर लिया। बालक रहीम विद्या के प्रति विशेष रुचि लेने लगा। रहीम की प्रारंभिक शिक्षा अरबी, फारसी और तुर्की में सम्पन्न हुई। कालांतर में वे इन भाषाओं के प्रकांड पंडित बन गये। अकबर ने रहीम की शिक्षा की व्यवस्था अच्छी तरह से की थी और उसी काल में उन्हें मिर्जा खां की उपाधि से विभूषित किया गया। रहीम ने ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में ही काव्य रचना प्रारंभ कर दी थी। रहीम की काव्य गंगा निरंतर गति से बहने लगी।

अकबर ने रहीम की अद्भुत प्रतिभा से प्रभावित होकर अपनी धाय जीजी माहम अगा की बेटी एवं खाने आजम की बहिन महाबानू बेगम से उनका विवाह कर दिया। गुजरात को मुगल साम्राज्य में मिलाने के लिए अकबर की ओर से रहीम ने अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन करके अकबर को प्रभावित किया। अकबर ने प्रसन्न होकर सवत् 1629 में पाटन की जागीर रहीम को प्रदान की। गुजरात में जनता द्वारा उपद्रव करने पर रहीम को गुजरात भेजा गया। विजयी होकर लौटने पर सवत् 1633 को उन्हें गुजरात का सूबेदार बनाया गया। सवत 1635 में कुम्भलनेर के अजेय किले को जीत कर रहीम ने अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया। सवत 1636 में सम्राट अकबर ने उन्हें मीर अर्ज का पद प्रदान किया। गुजरात में मुजफ्फर सुलतान द्वारा विद्रोह शुरू करने पर फिर से रहीम को गुजरात में विद्रोह दमन के लिए भेजा गया। सवत 1640 में

रहीम ने शत्रुओं को परास्त करके जंगलों में भगा दिया। अकबर ने खुश होकर इन्हें पंच हजारी मनसबदार तथा खानखाना जैसे महत्वपूर्ण खिताब दिए। वकील का पद उस समय शासन काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। अकबर के नवरत्नों में से टोडरमल की मृत्यु होने के बाद सम्वत 1646 में यह पद रहीम को प्रदान किया गया। संवत 1662 में अकबर की मृत्यु हुई। सलीम जहांगीर सिंहासन पर बैठा।

मलिक अम्बर द्वारा दक्षिण में विद्रोह शुरू करने पर रहीम ने दक्षिण में प्रस्थान किया। परन्तु अम्बर की विजय होने के कारण रहीम को राजधानी में बुला लिया गया। कुछ समय बाद पुनः कन्नौज और कालपी का विद्रोह शान्त करके शाहजादे खुर्रम के साथ दक्षिण में प्रस्थान किया। गोलकुंडा तथा बीजापुर के सुल्तान ने मुगल साम्राज्य के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इससे प्रसन्न होकर बादशाह ने रहीम को सात हजारी मनसबदार बना दिया।

रहीम के बारे में कई जनश्रुतियां प्रचलित हैं। उनका सम्पर्क रीवां नरेश और गोस्वामी तुलसीदास से भी था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में रामचन्द्र शुक्ल जी ने एक किंवदंती का उल्लेख किया है। खानखाना जब दीन-दशा में थे, एक याचक उनके पास आया। उन्होंने उसे निम्न दोहा लिखकर रीवां नरेश के पास भेजा :—

> यों रहीम सुख-दुख सहत बड़े लोग सह सांति ।
> उवत चंद जेहि भांति सो, अथवा ताही भांति ।।
> रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय, ।
> हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ।।
> चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश ।
> जा पर बिपदा परति हैं, सो आवत यहि देश ।।

इस दोहे का प्रभाव रीवां नरेश पर इतना पड़ा कि उन्होंने याचक को एक लाख रुपया देकर सम्मान पूर्वक विदा किया।

एक जनश्रुति यह भी है कि एक गरीब ब्राह्मण था। उसके पास धन का अभाव था। कुछ मदद की दृष्टि से वह ब्राह्मण तुलसीदासजी के पास आया। तुलसीदासजी के पास भी क्या था। वह अकिंचन ही थे। उन्होंने दोहे की एक पंक्ति लिखकर रहीम के पास भेजा।

"सुरतिय नरतिय नागतिय, यह जानत सब कोय"

रहीम ने ब्राह्मण को काफी धन देकर विदा किया और दोहे को निम्न प्रकार से पूरा किया —

गोद लिए हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय ।

रहीम को ललित कलाओं से भी बड़ा प्रेम था। संगीत और चित्रकला के वे पारखी थे। एक बार एक चित्रकार ने उन्हें एक चित्र भेंट किया। उस चित्र में एक सुंदरी का दृश्य था। सुंदरी स्नान करने के बाद कुर्सी पर बैठकर एक ओर झुककर अपने बालों को फटकार रही थी। दासी हाथ से रगड़ रगड़कर उसके पैर धो रही थी। चित्र को देखकर रहीम मुग्ध हो गए। चित्रकार को पांच हजार रुपये का इनाम दिया। चित्रकार ने रहीम से कहा आपको चित्र में क्या विशेषता दिखाई दी। रहीम ने कहा, "इस मोहिनी के चेहरे पर जो भाव और होठों पर जो मुस्कान है वह अत्यंत आकर्षक है। इसका कारण समझने के लिए उसके पैरों की ओर देखना चाहिए जहां गुदगुदी हो रही है।" चित्रकार उत्तर सुनकर मुग्ध हो गया। और सदा के लिए वह रहीम का दास बन गया।

जिस रहीम का जीवन पहले सुखमय व्यतीत हुआ था, उसी रहीम का अपमान तिरस्कार सहने का समय आ गया। जहांगीर के काल में धीरे धीरे नूरजहां का हस्तक्षेप शुरू हो गया। महावत खां को अपने पक्ष में करने के लिए रहीम का खानखाना पद महावत खां को दिया गया। इससे उत्तेजित होकर शाहजादा और रहीम दोनों ने विद्रोह कर दिया। जहांगीर ने विद्रोह का दमन किया और रहीम पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े। इस आपत्ति में रहीम दर-दर ठोकरें खाता रहा। रहीम ने इसका वर्णन स्वयं ही किया है।

समय दिसा कुल देखि कै, सबै करत अपमान ।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ।।

अंत में दीन हीन अवस्था में चारों ओर से निराश होकर रहीम चित्रकूट में रहने लगे। ईश्वर कृपा से जहांगीर ने पुनः प्रसन्न होकर संवत 1682 में रहीम को फिर से खानखाना की पदवी एवं मंसब पद प्रदान किए। रहीम का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु, और अपने जीवनकाल में ही पुत्रों, दामाद एवं नाना पुत्रों का देहांत उन्होंने देखा। संवत 1665 में बेगम महाबानो का देहांत हो गया। कहा जाता है कि

संवत् 1661 म महावतखाँ ने खानखाना की शत्रुता के कारण उनके पुत्र दाराबखाँ का सिर काटकर उसे एक थाल म ढककर तरबूज के नाम से खानखाना को भेजा था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिवारिक जीवन सुखमय नही था। रहीम की दोहावली म इस विषम अवस्था और कटु अनुभव का निरूपण स्थान स्थान पर हुआ है।

मृत्यु के कुछ दिन पूर्व नूरजहाँ ने इन पर अपने स्वार्थवश विशेष प्रेम दिखाया। उन्हें पुन सेनापति बनाकर विद्रोही महावत खाँ को दबाने के लिए दिल्ली की ओर भेजा। बेगम ने उस समय उन्हें बारह लाख रुपये की नकद राशि, ऊँट घोड़े हाथी की सेना तथा अजमेर का समस्त सूबा प्रदान करके उनकी बहुत बड़ी इज्जत की। यही उनका अंतिम सम्मान तथा अंतिम अभियान था। भगवान ने इन्हें विजय भी प्रदान की थी।

एक और महत्वपूर्ण घटना इस प्रकार है। हल्दी घाटी के युद्ध म रहीम ने भाग लिया था। इनकी पत्नी के डेरे पर राजपूतो का अधिकार हो गया था। राजपूतो ने अपनी परम्परा के अनुसार महाराणा प्रताप के आदेश से इन युवतियों को ससम्मान रहीम को सौंप दिया था। रहीम ने इस उपकार का बदला अंतिम क्षण तक चुकाया। महाराणा प्रताप के त्याग और शौर्य की प्रशंसा मुगल दरबार म केवल रहीम ही करते थे।

रहीम धार्मिक सहिष्णुता तथा सांस्कृतिक समन्वय के आदर्श थे। उनका कृष्ण प्रेम अनन्य था। एक श्लोक म उन्होने भगवान श्रीकृष्ण को अपना हृदय समर्पित किया। वे कहते हैं हे प्रभो ! आपका घर क्षीरसागर म है। रत्न माणिक-मोती की कमी नही। लक्ष्मीजी आपकी पत्नी हैं। अत रुपये पैसे की आपको दरकार नहीं। आप सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी है। अत जमीन-जायदाद आदि की भेंट देना व्यर्थ है। तो फिर मैं आपको क्या समर्पित करूँ ? हे प्रभो ! आप के पास एक कमी है और वह यह कि आपका हृदय राधारानी चुरा ले गई है। अत मेरा हृदय आपके चरणो म समर्पित है। इसे ग्रहण कीजिए। इसम आपका भी भला और मेरा भी। स्वामी मेरा हृदयहीनता की स्थिति म ही होगा और स्वामी यदि हृदयहीन न हो तो सेवक सब कुछ स्वयं ही पा जाता।

रहीम की पत्नी की मृत्यु लाहौर म हुई थी और रहीम की दिल्ली मे। इसीलिये रहीम को दिल्ली म दफनाया गया। यह मकबरा रहीम ने अपनी प्रिय पत्नी माहबानू के लिए बनवाया था। मथुरा रोड पर स्थित निजामुद्दीन

के बदलो में शाहों अहसनाल के पास रहीम का मकबरा है। हरी भरी वाटिका मे यह लाल रंग का मकबरा आज भी रमणीय है।

रहीम के प्रमुख ग्रंथो के नाम इस प्रकार हैं दोहावली, नगर शोभा, बरवै नायिका, भेद मदनाष्टक व फुटकर छंद, शृंगार सोरठा, रहीम काव्य, खटे कौतुकम, शतरंज शतरं वाकियात बाबरी का फारसी अनुवाद, तुजक बाबरी का फारसी अनुवाद। रहीम कई भाषाओं के पंडित थे। रहीम की भाषा आज भी राष्ट्रीय एकता के लिए आदर्श है। यदि इनकी दोहावली में ब्रजभाषा का मधुर, सरस और सुबोध रूप देखने को मिलता है, तो बरवै में उनकी अवधी का सरस मधुर स्वरूप विकसित हुआ है। देखिए रहीम साहित्य की झलक —

(1)

राग शुद्ध कल्याण ताल तिताला

छवि आवन मोहन लाल की।
काछिनि काछे कलित मुरली कर, पीत पिछौरा सालकी॥
बंक तिलक केशर को कीनें, दुति मानो विधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें, चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हसनि अधर सुधरनि की, छवि छीनी सुमन गुलाल की।
जलसों डारि दियो पुरइन पर, डोलनि मकुता मालकी॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि, बोल निमदन गोपाल की।
यह सुरूप निरख सोई जाने, या रहिम के हाल की॥

(2)

राग पटमजरी-ताल तिताला

कमलदल ननिकी उनमानि।
बिसरति नाहिं सखी, मो मन ते म द मन्द मुसुकानि॥
यह दसननि-दुति चपलाहूते महाचपक चमकानि।
वसुधा की बस करी मधुरता, सुधा पगी बतरानि॥
चढी रहत चित डर बिसाल की मकुटमाल यह रानि।
नृत्य समय पीताम्बरहू की, फहरि फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्रीवृन्दावन ब्रज तें, आवन आवन जानि।
अब रहीम चित नटरति ह, सकल श्याम की बानि॥

आलम

एक ऐसे युगप्रवर्तक कवि जो रीतिकालीन "रीतिमुक्त" काव्य परम्परा के आधारस्तम्भ माने जाते हैं, हम उन्हें आलम के नाम से जानते हैं। कविवर आलम की जन्मतिथि आज तक भी निश्चित नहीं हो सकी है। केवल रामचन्द्र शुक्ल इनके रचना काल का संवत 1740-1760 के लगभग मानते हैं। वैसे भारतीय विद्वानों ने अनेक प्रकार से कवि आलम के अस्तित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है, परन्तु जन्मतिथि निश्चित करने के बारे में सभी लोग मौन हैं। कवि आलम के काल को लेकर विद्वानों में आज तक काफी मतभेद पाया जाता है। आज तक उन मतभेदों को समाप्त करने का कार्य नहीं हुआ है।

विद्वानों के मतभेदों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग वह है जिसमें शिवसिंह, मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, जो आलम नाम के दो कवि होने का जिक्र करते हैं। प्रथम कवि अकबर के समकालीन था तथा द्वितीय कवि बादशाह औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम शाह के आश्रित थे। दूसरे वर्ग का यह कहना है कि आलम नामक केवल एक ही कवि हुआ है, दूसरा नहीं। शिवसिंह ने अपने "शिवसिंहसरोज" में मुअज्जम शाह की प्रशंसा में निम्न छन्द लिखा है —

> जानत औली कितावन को, जे निसाफ के माने कहे हैं ते चीन्हे।
> पालन हो इत आलम को उतनी के रहीम के नाम को लीन्हे॥
> मौजमशाह तुम्हें कविता करिबे को दिल्ली पति है वर दीन्हे।
> काबिल है ते रहें कितहू कहू काबिल होत है काबिल कीन्हे॥

इस छन्द के आधार पर आलम नाम के दो कवि का अस्तित्व शिवसिंहजी ने माना है। परन्तु द्वितीय वर्ग के आलोचकों का मत है कि इस छन्द में प्रयुक्त आलम शब्द संसार वाची है। जब तक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि दूसरे आलम का कोई अस्तित्व नहीं है, तब तक हिन्दी साहित्य में दो आलम स्वीकृत रहेंगे। हम परम्परा के अनुसार दिल्ली का एक स्वच्छन्दतावादी प्रेमोन्मत्त कवि से वंचित करना नहीं चाहते।

कवि आलम के बारे में बहुत सी जनश्रुतियां पायी जाती हैं। एक जनश्रुति का जिक्र हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा अन्य ग्रंथों में पाया जाता है। वह जनश्रुति इस प्रकार है। एक बार शेख नामक एक रंगरेजिन को आलम ने अपनी पगड़ी रंगने के लिए दी। पगड़ी के एक सिरे पर एक कागज का टुकड़ा बंधा हुआ था। आलम को स्मरण नहीं रहा। उसने वैसी ही पगड़ी दे दी। शेख ने रंग में डालने से पहले पगड़ी को देखा, एक कागज का टुकड़ा बंधा हुआ था, उसमें निम्न पंक्ति लिखी थी। —

कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।

रंगरेजिन शेख ने उक्त पंक्ति पढ़ी और उसे पूरा करके बांध दिया। शेख ने निम्न पंक्ति लिखी थी —

कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धर दीन ।।

कहा जाता है कि आलम जाति से ब्राह्मण थे। शेख रंगरेजिन के काव्य प्रतिभा ने उन्हें ऐसा आकृष्ट किया कि आखिर इन्होंने शेख को अपनी धर्मपत्नी बना लिया। शेख से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जहान था।

शेख अत्यंत हाजिरजवाबी थी। एक बार शाहजादा मुअज्जम ने मजाक के साथ शेख से पूछा, 'क्या आलम की पत्नी आप ही हो'? शेख ने फट से सवाल का जवाब दिया 'हां, जहांपनाह! जहान की मां मैं ही हूं।"

डॉ० जगदीश गुप्त का मत है कि शेख नाम आलम का ही था। उन्होंने इस प्रकार का मत प्रतिपादन करने का कारण यही प्रतीत होता है कि आलमकेलि ग्रंथ में कुछ छंद शेख के भी पाये जाते हैं। अगर यही मान लिया जाय कि शेख नाम आलम का ही था तो एक ही कवि को दो नाम से रचना करने की जरूरत ही क्या थी? इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत ठीक प्रतीत होता है। उनका कहना है कि शेख नाम से उपलब्ध पद आलम की पत्नी द्वारा रचित हैं।

कवि आलम के समय में उत्तर भारत में हिन्दी का निर्माण हो रहा था। देव, बिहारी, मतिराम आदि कवि ललित साहित्य की रचना में निमग्न थे। देश के कितने ही रजवाड़ों के आश्रय में रीतिकालीन साहित्य का निर्माण हो रहा था। नखशिख वर्णन प्रेम और प्रणय की सरस कविता का अभ्युदय इसी युग में हो रहा था। आलम मनमौजी और प्रेमी कवियों में से थे। रीतियुग की स्वच्छन्द शृंगार धारा में इनका महत्वपूर्ण योग माना गया है। कवि आलम के कुछ सवैये तो

इतन हृदयद्रावक और प्रभावोत्पादक ह कि सम्पूण रीति साहित्य म इनका अपना ही महत्त्व माना जाता है। प्रेम की वीणा को निरतर बजाने वाले इस अमर कवि गायक की काव्य महत्ता के सदभ म आचाय रामचन्द्र शुक्ल का कथन अत्यन्त महत्वपूण है। 'ये प्रेमोन्मत्त कवि थ और अपनी तरग के अनुसार रचना करत थ। इसी स इनकी रचनाआ म हृदय तत्व की प्रधानता है। प्रेम की पीर या इश्क का दद इनक एक एक वाक्य म पाया जाता है। शब्द वाहुल्य, अनुप्रासादि की प्रवृत्ति इनम विशेष रूप स कहीं नही पायी जाती। शृगार की ऐसी उन्मादमयी उक्तिया इनकी रचनाआ म मिलती है कि पढ़न और सुनन वाल लीन हो जात ह। यह तन्मयता सच्ची उमग म ही सम्भव है। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि से आलम की गणना रसखान और घनानन्द की कोटि म होनी चाहिए।'

दिल्ली म ही रीति मुक्त काव्यधारा का सजन हुआ। इस क्रम म भक्त-प्रवर रसखान और घनानद के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होने राजा और नवाबो को प्रसन्न करने की परिपाटी छोडकर स्वान्त सुखाय के लिए रचना की थी। आलम भी इसी धारा के कवि है।

आलम रचित ग्रथो को लेकर भी विद्वानो म मतभेद पाया जाता है। कुछ विद्वानो क अनुसार इनके तीन ग्रथ मान जात है। आलम केलि, माधवानल, कामकदला और श्याम सनेही। कुछ विद्वान केवल आलम केलि ही उनकी कृति मानत है। आलम केलि वह ग्रथ है, जिसम रूप की निर्झर धारा फूट पडती है और रसिक लोग इस साहित्य सुरा का पान कर भ्रमर के समान झूमत फिरत है —

(1)

राग जजवती ताल कहरवा

जसुदा के अजिर बिराज, मनमोहन जू।
अग रज लाग छबि छाज सुरपाल की॥
छोटे छोटे आछे पग घुघुरू घूमत घने।
जातें चित हित लाग शोभा बाल जाल की॥
आछी बतिया सुनाव छिन छाडिबो न भाव।
छातीसो छपाव लाग छोह वा दयाल की॥
हेरि ब्रज नारी हारी वारि फरि डारी सब।
आलम बलया लीज ऐसे नदलाल की॥

(2)

राग केदारा ताल कहरवा

मुकता मनि पीत हरी बनमाल गु ।
सो सुर चापु प्रकास किये जनु ।।
भूषन दामिनि दीपति है ।
धुरवा सित चन्दन खौर किये तनु ।।
आलम धार सुधा मुरली ।
बरसा पपिहा ब्रजनारिन को पनु ।।
आवत है बन से घन से लखि ।
री सजनी घनस्याम सदा घनु ।।

दाता गंजबख्श

अच्छे और बुरे, गृहस्थाश्रमी और संत विचारधारा के लोग हर जाति और धर्म में पाये जाते हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक धर्म का फैलाव उसका प्रचार और प्रसार उन सदाचारी और संयमी पुरुषों के द्वारा ही हुआ है जो उस धर्म के प्रवर्तक काल में हुए। ऐसी ही जीवन गाथा है एक मुसलमान सूफी महात्मा दाता गंजबख्श की। उनके उपदेश साधकों के लिए जिज्ञासुओं के लिए और मुमुक्षुओं के लिए अनमोल रत्न हैं। इन विचारों पर अमल करके कोई भी परमार्थ-पथिक उस मंजिल तक पहुंच सकता है, जहां से आगे कुछ नहीं है वही सारे साधना का सार है।

सूफी का अर्थ है—सफाईवाला। जिसने अपने हृदयरूपी पात्र को गंदगी और विकारों से शुद्ध कर लिया पात्र को स्वच्छ किया, मन के मैल को धो डाला, वही सूफी कहलाने का हकदार है। इस्लाम धर्म में प्राचीन काल से दो वर्ग चले आ रहे हैं—एक विद्वान मौलवी व मुल्लाओं का और दूसरा सूफियों का। सही रूप में देखा जाय तो मौलवी व मुल्ला लकीर के फकीर हैं। वे धर्म की मिथ्या रूढ़ियों में भी दखल नहीं देना चाहते। परन्तु सूफियों की बात अलग है। वे इस्लाम धर्म में रहते हुए मौलवी मुल्लाओं की तरह लकीर के फकीर नहीं। वे धर्म की उन बातों से आगे बढ़ जाते हैं, जो उनके अनुभव व ज्ञान की कसौटी पर ठीक नहीं उतरतीं। इन्हीं कारणों से सूफियों और मुल्लाओं में सदैव मनमुटाव रहता आया है। समयानुकूल बादशाही दरबारों में थोड़ी पहुंच होते ही इन मुल्लाओं ने उच्चकोटि के सूफी महात्माओं को अनेक कष्ट दिये हैं। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

सूफीमत को एक प्रकार से संतमत ही समझना चाहिए, क्योंकि दोनों के सिद्धांत लगभग मिलते जुलते हैं, केवल शब्दों या भाषा का भेद है। सूफीमत की बुनियाद महात्मा अबूबक्र ने डाली थी जो मुहम्मद साहब की गद्दी पर प्रथम खलीफा बने। आगे चलकर तो हरेक धर्म पंथ तथा सम्प्रदाय में बिगाड़ या खराबी पैदा होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। वर्तमान युग में हिंदू साधुओं की तरह मुसलमान सूफी भी बहुत नीचे गिर चुके हैं।

उनमें दिखावा व ढोंग रह गया है, भीतर की कमाई किसी के पास नहीं है। चेला बनाकर के पैसा कमाने का एक धंधा इन लोगों ने अपना लिया है। भेष बना लेते हैं, बातें करना सीख लेते हैं और इन्हीं के सहारे लोगों को धोखा देते हैं। ऐसे पाखण्डी सूफी फकीर दाता साहब के जमाने में भी थे। उन्होंने अपनी पुस्तकों में इनको काफी बुरा भला कहा है।

दाता साहब का असली नाम अली हिजावरी था। इनकी जन्मभूमि गजनी शहर था। माता पिता ने इनका पहला विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में कर दिया था। पहली पत्नी कुछ वर्ष बाद ही मर गई। उसी साल दूसरा विवाह हुआ। उस समय इनकी आयु बीस वर्ष की थी। दूसरी स्त्री भी मर गई। माता पिता और भाई भी मर गये। फिर इन्होंने शादी नहीं की। बाल्यावस्था से ही इनका मन वैराग्य में रम गया था। ये गजनी के प्रसिद्ध महात्मा अबुल फजल खतली की शरण में गये। उनसे दीक्षा ली। बारह साल तक उनकी सेवा में रहकर अध्यात्म की सारी मंजिलें पार कीं। गुरु ने इन्हें योग्य बनाकर देशाटन की आज्ञा दी। इस काल में इन्होंने कई पश्चिमी देशों का भ्रमण किया। ऊंचे से ऊंचे महात्माओं का सत्संग किया। फिर गुरुदेव के आश्रम में लौट आये। तन मन से गुरु की सेवा करने लगे। एक दिन सायंकाल गुरुजी भोजन से निवृत्त होकर हाथ मुंह धो रहे थे। दाता साहब जल दे रहे थे। गुरुजी ने इन्हें कहा — अली! तू लाहौर जा और वहां अध्यात्म का प्रचार कर।

दाता साहब ने कहा—गुरुजी, वहां तो मेरे बड़े भाई हुसैन जंजानी हैं, वह बहुत काम कर रहे हैं। वह बहुत ऊंचे और मुझसे योग्य हैं फिर वहां मेरे जाने की क्या जरूरत है?

गुरु ने कहा—तुझे और बातों से क्या लेना है। हमने जो हुक्म दिया है, उस पर अमल करो।

दाता साहब चुपचाप लाहौर रवाना हो गये। खैबर की घाटी पार करके डेढ़ दो महीने में लाहौर पहुंचे। सायंकाल का समय था। गांव के बाहर एक टूटी मस्जिद में ठहरे। रात काटी और प्रातःकाल शहर की ओर चल पड़े। सामने से एक अर्थी आ रही थी। हजारों आदमी अर्थी के साथ थे। उसमें हिंदू थे, मुसलमान थे। दोनों धर्मों के लोग साथ चल रहे थे। आगे बढ़कर

पूछा—यह अर्थी किसकी है। कौन अल्ला का प्यारा इस दुनिया को छोड़कर जा रहा है, जिसको विदा करने इतने लोग जा रहे हैं।

किसी ने कहा—यह हुसैन जंजानी का जनाजा है, जो लाहौर के एक ऊंचे दर्जे के फकीर थे। गुरु आज्ञा का रहस्य, उन्हें अब समझ में आया। मन-ही मन गुरुदेव से क्षमा मांगी। जब लोग उन्हें कब्र में दफनाकर लौटे तो आप भी इनके साथ लौट आये और उस स्थान पर जाकर ठहर गये। इस घटना से यह पता चलता है कि इनके गुरु कितने पहुँचे हुए थे जो दो महीने आगे की घटना लाहौर से दूर गजनी रहते हुए जान गये थे। यह समय इतिहास की दृष्टि से सन् 1039 ईसवी के आसपास का था। महमूद गजनवी के छः हमले भारत पर हो चुके थे और वह सातवें हमले की तैयारी में था।

दाता साहब ने लाहौर में पहुँचकर पहले छोटी मस्जिद बनवाई। उसमें एक मदरसा खोल दिया और स्वयं लड़कों को पढ़ाने लगे। ये चार मास पढ़ाने का काम करने के बाद पढ़ाना छोड़ दिया। लोगों ने पूछा—पढ़ाने का काम क्यों छोड़ दिया? आपने उत्तर दिया—इस काम से मेरे दिमाग में हुकूमत का अहंकार पैदा हो रहा था। इसी कारण मैं अलग बैठ गया। फकीर को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये, जिससे उसमें अहंकार पैदा हो जाय, क्योंकि अहंकार आते ही ईश्वर मनुष्य से दूर हो जाता है।

कर और सेवा लेने से अपने को बचा। किसी का दिल न दुखा यह महान पाप है। सबका काम कर पर किसी को अपना मित्र न जान। धन स्त्री और संतान को नरक की निशानी समझ। गृहस्थ की खिदमत करनी चाहिये, मगर उन्हें अपना दिल नहीं देना चाहिये। फकीरी की दौलत और अपना ज्ञान अमीरों और अनधिकारी को नहीं लुटाना चाहिये उसे बहुत सम्हाल कर रखना चाहिये और जो सच्चा जिज्ञासु हो उसे ही देना चाहिये। यह थोड़ी सी बात है इस पर अमल कर, ईश्वर अपने दिल में कुछ जगह देगा तेरा कल्याण करेगा।"

दाता साहब ने कुल ग्यारह पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से आजकल केवल दो उपलब्ध हैं। एक का नाम "कशफुल इसरार" और दूसरी का नाम "कशफुल महजूब" है। इसरार शब्द का अर्थ भेद व रहस्य होना है। "कशफ" खुलने को कहते हैं। पहली पुस्तक बहुत ही छोटी है परन्तु इसमें सागर को गागर में भरा है। अध्यात्म के सारे भेद संकेत में बताये गये हैं। दूसरी "कशफुल महजूब" बहुत बड़ा ग्रन्थ है, जिसमें कोई बात छूटी नहीं है। अध्यात्म के हरेक सिद्धांत पर खूब लिखा गया है। सूफियों में यह पुस्तक प्रामाणिक मानी जाती है। हिजाब पर्दे को कहते हैं। कशफुल महजूब का अर्थ है—पर्दा खोल देना। दोनों पुस्तकें फारसी भाषा में हैं। अब इनकी भाषा इतने पुराने समय की है, जो न तो ठीक से पढ़ी जाती है और न जल्दी समझ में आती है।

दाता साहब ने समय समय पर जो उपदेश अपने शिष्यों को दिए हैं वे सभी साधकों के लिए अनमोल रत्न हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

(1) अमीरों की सोहबत से अपने को बचाओ क्योंकि अमीरी और फ़कीरी में बैर है। नेक दिल अमीर की प्रशंसा करने में कोई बुराई नहीं है। पर इस प्रशंसा के साथ अपनी कोई गरज नहीं होनी चाहिए। फकीरी में लालच और तृष्णा का होना बहुत हानिकारक होता है।

(2) मुरीद (शिष्य) के लिए पीर (गुरु) ही सब कुछ है। जो दिल और जान से उसकी सेवा नहीं करता, उसके हाथ कुछ नहीं आता।

(3) ऐ मुरीदो! कठिनाइयों और मेहनत से मत घबराओ हिम्मत से काम लो, वीर बनो और अपना पूरा समय मालिक की याद में लगा दो।

(4) विद्या प्राप्त करो मगर पढ़ने तक ही न रहो उस पर अमल भी करो। बिना अमल के विद्या बेकार है।

(5) मा-बाप की खूब खिदमत करो, उनका आशीर्वाद प्राप्त करो। जो मा-बाप की खिदमत नहीं करता, उस पर ईश्वरीय दया नहीं होती, उसे नर्क मिलता है।

(6) ऐ मुरीदो! यह दुनिया एक समुद्र है जिसमें अनेक तरंगें उठ रही हैं, जीव इसके जल की सतह पर तैर रहे हैं। तुम्हें होशियार रहना चाहिए। इसमें डूब न मरो। गोता लगाना बुरा नहीं, पर होश खो देना बुरा है।

(7) भेषधारी और झूठे साधुओं की संगत से अपना बचाव रखो, क्योंकि उनसे हानि ही होती है।

(8) विद्वानों की इज्जत करो पर जो विद्वान रुपये के लालच से अमीरों की सोहबत और प्रशंसा में पड़ गये हों उनसे दूर रहो। वह खुद गिर रहे हैं और तुम्हें भी गिरायेंगे।

(9) ऐ मुरीदो! खुदा जिस हाल में रखे उसी में राजी रहो। जंगल रहने के लिए दे तो जंगल में खुशी से रहो, बस्ती में जगह दे तो वहां रहो। घोड़ा चढ़ने को दे तो घोड़े पर चढ़ो और गदहा दे तो गदहे पर चढ़ो। अच्छा भोजन वह भेजे तो अच्छा खाओ और सूखे टुकड़े दे तो, उन्हें प्रसन्नता से खाओ। यदि कुछ न दे तो सन्तोष करो और प्रसन्न रहो, यही फकीरी है।

(10) ऐ मुरीदो! त्याग और परोपकार ही फकीरी की कुंजी है। दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए कष्ट उठाना और दूसरों के लाभ के लिए अपने नुकसान की ओर ध्यान न जाना चाहिये, स्वार्थ को त्याग देना ही धर्म है।

(11) किसी ने पूछा—दान और भेंट में क्या भेद है और यह फकीर को लेना चाहिये या नहीं? उन्होंने उत्तर में कहा कि दान वह होता है, जो अपने या अपने परिवार पर कोई विपत्ति आती है, तो उसे दूर करने के लिए ईश्वर के नाम पर संकल्प किया जाता है। दान गरीब और मोहताजों को देना चाहिये यह हक उनका ही है। भेंट ऊंचे दर्जे के महापुरुष सदा से लेते आये हैं उन्हें अपने पास में लाने रहे हैं, पर भेंट के लिए भी यदि अपने दिल में इच्छा हो रही हो, तो उसे नहीं लेना चाहिये। अचानक ईश्वर की प्रेरणा से कोई सामने धर करता, उसका

बाबा फरीद

इनका जन्म लोकजिन गाहवों के अनुसार दीपालपुर के निकटवर्ती किसी कोठी-वाल (खोतुवाल) गांव में हुआ था। सरहिन्द में इनकी समाधि है। गुरु नानक ने अपनी पूर्व की यात्रा में लौटते समय इनसे भेंट की थी। वह पाक-पट्टन में रहते थे। फरीदीन मसऊद बाबा फरीद आज से लगभग आठ सौ साल पहले पैदा हुए थे। इनका जीवनकाल 1200 ई० से 1280 ई० माना जाता है। वह महमूद गजनवी के निकट सम्बन्धियों में से थे। गजनी पर जब तैमूर का कब्जा हो गया तो फरीद के दादा गजनी छोड़कर भारत में आ बसे थे।

शेख फरीद पाकपट्टन गद्दी के संस्थापक थे। बाबा फरीद अपने युग के प्रसिद्ध सूफी विद्वान ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार शाह काकी महरौली (दिल्ली) के शिष्य थे। दिल्ली के प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया फरीदजी के शिष्य थे। फरीदजी की मां धार्मिक विचारों की थी। वह बालक फरीद को सच्चे मन से ईश्वर की प्रार्थना करने की प्रेरणा देती थी। वह प्रतिदिन बिछावन के नीचे शक्कर छिपाकर रखती थी। प्रार्थना के बाद शक्कर निकालकर देती थी। एक दिन मां घर में नहीं थी। फरीद ने इबादत (प्रार्थना) की, तो सचमुच ही शक्कर निकली। उस दिन मां ने शक्कर नहीं रखी थी। मां ने जब देखा तो उसे विश्वास हो गया कि बालक सच्चे मन से प्रार्थना करता है। इस दिन से फरीद का नाम शक्करगंज पड़ गया, जिसका अर्थ है शक्कर की खान।

सूफी संत कठोर तपस्या में विश्वास रखते थे। वे एक बार कुएं में लटके रहे और उन्होंने पानी की बूंद तक न पी। अपनी शक्ति और तपस्या के बारे में वे कहते हैं —

> फरीदा तनु सुक्का पिंजर थिया, तलियां खूंडे ही काग।
> अजै सु रबु न बाहुड़िओ, देखु बंदे के भाग॥

मेरा शरीर सूख गया है। केवल कंकाल रह गया है। कौवे मुझे मरा मानकर मेरा मांस नोच नोचकर खा रहे हैं। अब भी ईश्वर को मुझ पर दया नहीं आ रही है उसका दीदार मुझे नहीं हुआ। मैं कैसा अभागा हूं।

समाज में ऊंच-नीच, हिंदू-मुसलमान और अन्य जातपात का जोर था। फरीदजी कहते हैं —

फरीदा खालक खल्क माहि, खल्क बसे रब माहि।
मंदा किसनो आखिए जां, तिस बिन कोई नाहि॥

ईश्वर कण-कण में बसा है। सारा संसार उसी का अंश है। यहां कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं। ऐसा कोई नहीं, जिसमें खुदा का अंश नहीं हो।

फरीद उस ईश्वर में कितने तल्लीन हैं उन्हें अपने शरीर की भी कोई परवाह नहीं। वह कहते हैं —

कागा करग ढंढोलिया, सगल खाया मांस।
ए दुई नयना मत छुअऊ, पिर देखण की आस॥

हे कौवे तूने नोच-नोच कर सारा मांस खा लिया है। मुझे इसकी कोई परवाह नहीं। मेरी एक प्रार्थना है, मेरी ये दो आंखें रहने दो, इन्हें छोड़ दो, इन्हीं से मैं अपने पीर के दर्शन करूंगा। एक और दोहा ऐसा ही है —

कागा सब तन खाइयो, मेरा चुन-चुन खइयो मांस।
दो नैना मत खाइयो, मोहि पिया मिलन की आस॥

कहा जाता है कि वह वर्षों कुएं में लटके रहे और बाद में 12 साल तक पेट पे तख्ती बांधकर अकेले घूमते रहे। उनकी मां ने उन्हें कहा था किसी से भी खाने के लिए नहीं मांगना, जब तक खाना खुद न आये, भूखे रहना।

मनुष्य जीवन कितना निस्सार है। फरीदजी ने जीवन की एक घटना इस प्रकार है। एक दिन वह लाहौर में एक गायिका के मकान के पास खड़े थे। उन्होंने संगीत की मधुर ध्वनि सुनी। वह सीधे मकान में चले गये। गायिका ने कहा, "खुदा का शुक्र! जिसने मुझ जैसे पापी के घर पुण्यात्मा को भेजा है।" फरीद ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी उस परमात्मा के बंदे हैं। ईश्वर के लिए सब समान हैं। बहुत दिनों बाद एक दिन फिर उसी मकान के पास से वह गुजर रहे थे, जहां उन्होंने वेश्या का उद्धार किया था। अब वेश्या का जीवन बदल गया था। उन्होंने देखा वहां से एक जनाजा निकला है, वही गायिका मरी थी। फरीद भी इस यात्रा में शामिल हो गये और कहा —

फरीदा जिन लोइण जग मोहिया से लोइण मैं डिठु।
कज्जल रेख न सहदिया से पंखी सुई बहिठु॥

फरीद ने मायिका की कब्र पर बैठकर कहा, "क्या सोचा ! मानव जीवन कितना निस्सार है। जिस मृग जैसी आंखों पर जमाना मोहित था और जो गुदुमार आँखें काजल का भार भी न सह पाती थी, आज उसी पर बैठकर पक्षी अंडे सेते हैं।"

आज संसार में स्वार्थ और सुख की होड़ लगी है। दूसरा का सुख देखकर अपना मन मत ललचाओ। आवश्यकताएं सीमित रखो। तभी हम सच्चा सुख मिलेगा। फरीद जी कहते ह -

रूखी सूखी खायके ठंडा पानी पिव।
फरीदा देखि पराई चोपड़ी न तरसाये जीव ॥

इस तरह सच्चा संत वही, जो निरंतर परमात्मा म लीन रहता है।

आपु सवारहि म मिलि मिलहि, म मिलिआ सुखु होइ।
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि, सभु जगु तेरा होइ ॥
फरीदा काले मडे कापडे, काला मेडा वेसु।
गुनही भरिया म फिरा, लोकु कह दरवेसु ॥

फरीद कजाकी के पहले सूफी कवि हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक रूप के दर्शन भी उनकी वाणी म मिलते है। उनकी वाणी मधुर है, उसम ईश्वरीय प्रेम का रस है। यह मानवीय भावना म सुरभित ह। उनकी कविता भी दरवशी की कविता है। वह एक निष्ठावान साधक थे। कबीर, दादू आदि संत उनसे प्रभावित थे। फरीदजी की वाणी ग्रंथसाहब में संग्रहीत है।

फरीदजी की साधना पद्धति म सूफीमत, इस्लाम और भारतीय अध्यात्म का सहज सुदर संगम है। उनकी प्रेम साधना म विलक्षण शांति कोमलता एवं स्निग्धता थी। उनकी प्रेम साधना भारतीय परम्परा के अनुरूप निवृत्तिमूलक थी। स्वयं को पत्नी तथा प्रभु को पति रूप में स्वीकार करके उन्होने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया। फरीदजी मे एक विशेषता यह है कि विदेशी मुसलमान होते हुए भी उन्होने भारतीय परिवेश को आत्मसात किया। फरीदजी भारतीय भक्ति भावना से अधिक प्रभावित हैं। परवर्ती निर्गुण भक्तिधारा के विकास म उन्होने महत्वपूर्ण योगदान किया है।

यद्यपि फरीदजी ने 'नमाज' आदि से एक शरई मुसलमान की तरह निष्ठा प्रकट की है, परन्तु मूलत वह प्रेममार्गी है। उनकी प्रणय अभिव्यंजना मे पूर्णनिष्ठा, दृढता, पवित्रता एव स्वच्छता है। उनमे प्रियतम के दर्शनो की तीव्र उत्कंठा है, उसे मिलने के लिए सभी कष्ट सहने की क्षमता है और न मिल पाने के कारण विरह व्याकुलता एव बेचैनी है तड़प और टीस है। अन्य सूफियो की भांति इनमें उद्विग्नता, उग्रता, उन्माद अथवा प्रचडता नही है।

शरीर और ससार की असारता, मिथ्यत्व तथा धनवैभव, ऐश्वर्य, यौवन, सुन्दरता, मान, प्रतिष्ठा आदि अस्थिरता एव क्षणभगुरता आदि का विवरण फरीद जी ने दिया है। दोजख और मृत्यु का भय दिखाकर मनुष्य को वह बुरे कर्मो से बचने तथा शुभ श्रेष्ठ कर्म करने के लिए उत्साहित करते है। सत्य, सन्तोष, परोपकार, क्षमा, विनम्रता, अहिंसा आदि गुणो को ग्रहण करके ईश्वरीय प्रेम मे लवलीन होने की प्रेरणा वह देते हैं।

> बूढा होआ शेख फरीद, कंपणि लगी देह।
> जे सउ वरिआ जीवणा, भी तनु होसी खेह॥

बुल्लशाह

भारत स्वतन्त्र होने के पहले लाहौर पंजाब प्रान्त में था। यह पंजाब का बहुत बड़ा शहर माना जाता था। विभाजन होने तक यही पंजाब की राजधानी रहा। लाहौर से पूर्व में तीन मील दूरी पर एक मियामीर नामक वेदान्ती फकीर रहता था। वह सूफीमत का था। इस जगह को मियामीर के बाद मियामीर की छावनी कहा जाता था।

मियामीर के शिष्य का नाम था बुल्लेशाह। वह पहले बलद शहर के बादशाह थे जो बुखारा से कुछ दूर है, पर जब प्रारब्ध-योग आ जाता है, तो जीवन में परिवर्तन होने में देर नहीं लगती। यह बात करीबन साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व की है। एक बार सांसारिक सुखों से मन ऊबा कि फिर वृत्ति परमार्थ पर हो जाती है। तब साधक सब कुछ छोड़कर परमार्थ का पथिक बन जाता है। फिर तो गुरु कृपा से वह पूर्ण रूपेण अधिकारी बन जाता है। यही बात बुल्लेशाह की हुई।

एक दिन बुल्लशाह के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। जीवन को साम्राज्य सुख देनेवाली बातों से बुल्लशाह का मन उठ गया। उसके मन में विषय सुखों के प्रति ग्लानि उत्पन्न हो गई। वह मन ही मन सोचता रहा। किसी बात की उत्कंठा जब होती है तो फिर मनुष्य चुपचाप नहीं बैठता। एक दिन बादशाह बुल्लेशाह ने अपने वजीरों से पूछा कि क्या कोई ऊंचा पहुंचा हुआ महात्मा है। जहां वह हो सके, वह सूफीमत का हो। वजीरों ने उसी समय मियामीर का नाम पेश किया। मियामीर सूफीमत के फकीर थे। इनका नाम दूर दूर तक फैला हुआ था। दूर देशों के लोग भी इन्हें जानते थे। वह उस समय के ख्याति प्राप्त महात्मा थे। शीघ्र ही एक दिन बुल्लेशाह ने बादशाही छोड़ दी और सदा के लिए फकीरी ग्रहण कर ली। अपने शाहजादे को गद्दी पर बिठाकर राजकाज से सदा के लिए मुक्त हो गये।

बुल्लेशाह के मन में इच्छा थी कि मैं मियामीर से मिलूं। अपने भावी गुरुदेव से मिलने की मन में तड़प थी। वह सौ पचास आदमी, वजीर तथा कुछ खजाना साथ लेकर लाहौर की तरफ निकल पड़े। दो महीने में लाहौर पहुंचे। मियामीर जंगल की एक कुटी में रहते थे और बहुत से फकीर बाहर रहते थे। जब कोई दर्शनार्थी आता, तब अंदर सूचित कर दिया जाता। अंदर से मियामीर साहब की इजाजत हो जाती, तो दर्शनार्थी अंदर जा सकता था।

बुल्लेशाह जंगल में मियामीर की कुटी के पास पहुंचे। बादशाह बुल्लेशाह ने भी फकीरों के द्वारा मियामीर से मिलने की सूचना भेज दी। मियामीर ने फकीरों से पूछा कि वह किस हालत में है? फकीरों ने कहा—पौ पचास आदमी उनके साथ है। बहुत-सा सामान है। सवारी के लिए घोड़े आदि हैं। साथ में वजीर हैं। बादशाही ठाट से वह आपके दर्शन के लिए आये हैं।

मियामीर साहब ने कहा—उन्हें जाकर कहो, अभी तुम्हें दर्शन नहीं होगा। फकीरों की बात सुनकर बुल्लेशाह बादशाह वहां से दूर चले गए। वजीर को पास बुलाकर कहा—आप आदमियों के साथ सामान लेकर वापस घर जाइए। मैं नहीं आऊंगा। वजीर ने कहा—मैं वहां जाकर शाहजादे को क्या जवाब दूंगा? यह मेरे लिए असम्भव है कि मैं आपको यहीं छोड़कर वापस घर जाऊं?

बुल्लेशाह ने कहा—वजीर, मैं तो वापस जाने के लिए यहां पर आया नहीं हूं। मैं तो खुदा के, ईश्वर के साथ मिलने के लिए यहां पर आया हूं। ठीक है, आप मेरा कहना नहीं मानते हो तो मैं अपनी मर्जी से सारा सामान लुटवा देता हूं। वजीर ने बादशाह से हाथ जोड़कर कहा—जहांपनाह की जो भी मर्जी हो! बादशाह ने सारा सामान अपने नौकरों में लुटवा दिया और कह दिया कि अपने-अपने घर चले जाएं! तकरीबन सभी नौकर चले गए। वजीर बेचारा लाचार हो गया। बादशाह का वैराग कोई साधारण नहीं था। वह प्रभु से मिलने की लगन में इतना मस्त हो गया था कि धीरे धीरे अपने शरीर की सुधबुध भी खो रहा था। बादशाह ने केवल एक चादर अपने लिए रख ली थी। बाकी सारा माल दान कर दिया।

अब बुल्लेशाह बादशाह मियामीर के पास आया। फिर फकीरों से मिलने के लिए सूचना भिजवाई। मियामीर साहब ने फकीरों से फिर पूछा—अब वह किस हालत में है? फकीरों ने कहा—उन्होंने सब कुछ लुटा दिया। केवल एक चादर अपने ऊपर ओढ़ी है। मियामीर साहब ने संदेश भेजा—अभी तुम्हें दीदार नहीं होगा। अगर आप दीदार के लिए उत्सुक है, तो यहां से बारह कोस पर रावी नदी के किनारे जंगल में एक फकीर रहता है। उसके पास जाकर बारह साल तक तपस्या करो। फिर मेरे पास आना, तुम्हें दीदार होगा।

बुल्लेशाह को केवल आज्ञा की देर थी। उसी वक्त वह चल पड़े। रावी के किनारे जंगल में गये। फकीर के पास पहुंचने पर इस फकीर ने बुल्लेशाह से प्रश्न किया, क्या आप बलख के बादशाह हो? बुल्लेशाह ने कहा, महाराज! आपने मुझे कैसे

पहचाना ? फकीर ने कहा—एक दिन मियामीर साहब मिले थे, उन्होंने मुझे कहा था कि इस दिन बलख के बादशाह तुम्हारे पास आएंगे, सो तुम उनको अभ्यास की जुगति बतलाना, जिससे उनका दिल साफ हो जाए। वह दिन आज ही है। वह कभी झूठ नहीं बोलते, मेरा पूरा विश्वास है। मेरे खयाल से आप ही बलख के बादशाह हैं।

बुल्लेशाह ने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर मैं ही हूं। इस शरीर को ही बलख का बादशाह कहते हैं। मुझे ही मियामीर साहब ने आपके पास भेजा है। उस फकीर ने बुल्लेशाह को योग की युक्ति बतला दी। बुल्लेशाह जंगल के कंदमूल खाकर योगाभ्यास करने लगे। जब बारह वर्ष का एक तप पूरा हो गया तो बुल्लेशाह का शरीर सूख गया। शरीर तथा चेहरे का रंग बदल गया। अब फकीर ने कहा, बुल्लेशाह तुम अब मियामीर साहब से मिलो। अब तुम्हें दीदार होगा।

बुल्लेशाह फकीर की आज्ञा से मियामीर साहब की कुटिया पर पहुंचे। पहले की तरह फकीरों द्वारा सूचना भेज दी। मियामीर साहब ने उनका हाल पूछा। फकीरों ने कहा—उनका चेहरा सूख गया है, रंग बदल गया है। उनके सिर के बाल बढ़ गए हैं। नाखून बढ़ गए हैं। शरीर पर मिट्टी लगी हुई है। अब वह पहचाने में भी नहीं आते। यह हाल सुनकर उन्हें अंदर बुलाया। भीतर पहुंचते ही बुल्लेशाह ने मियामीर साहब को दण्डवत प्रणाम किया। आज कई सालों बाद गुरु शिष्य का मिलन हुआ था। अभी तक गुरु (मियामीर साहब) से गुरुपदेश नहीं प्राप्त हुआ था। आज का वह महान दिन था। मियामीर साहब ने बैठने की आज्ञा दी। बुल्लेशाह गुरुजी के सान्निध्य में बैठ गये। गुरुदेव ने उनको अद्वैत आत्मा का उपदेश दिया। उस दिन से बादशाह का नाम बुल्लेशाह रख दिया गया। बुल्लेशाह अपने को कृतकृत्य मानने लगे। उनकी तपस्या सफल हो गई। अब बुल्लेशाह गुरुजी के सान्निध्य में रहने लगे। गुरु सेवा इनके जीवन का कार्य रहा। वह महान तपस्वी थे। वेदान्ती थे। इनकी रचना में केवल वेदान्त का ही वर्णन पाया जाता है। पंजाब में आज भी घर घर में लोग इनकी कविता गाते हैं।

इनके जीवन का एक प्रसंग बहुत ही सुंदर है। एक दिन बुल्लेशाह बाजार में गए थे। एक मुसलमान ने उन्हें बाजार में पूछा—बुल्लेशाह, तुम कौन हो? बुल्लेशाह ने साफ शब्दों में कहा—मैं खुदा हूं। फिर क्या

देखना था। शरारती मुसलमानो ने इन्हें पकडकर बादशाह के सामने पेश किया और बादशाह से शिकायत की कि यह फकीर कुफ्र करता है और कहता है—मैं खुदा हू। बादशाह ने बुल्लेशाह से पूछा—बुल्लेशाह, तू कौन है? बुल्लेशाह ने कहा—मैं बदा हू। बादशाह ने मुसलमानो से कहा—यह तो बदा कहता है। इसे छोड दो! इस तरह पकडना तथा छोडना तीन चार बार हुआ। आखिर एक दिन बादशाह ने बुल्लेशाह से पूछा—क्या बुल्लेशाह, ये लोग ठीक कहते हैं कि तुम बाहर अपने को खुदा कहते हो और यहा आकर बदा कहते हो? यह कैसे हो जाता है?

बुल्लेशाह ने कहा—आप खुदा और बदे का अर्थ सुनिये। जो शरा की कैद मे है, वह बदा कहलाता है और जो शरा की कैद मे नही, वह खुदा है। जब मैं बाजार मे शरा की कैद से रहित होकर घूमता हू, तब तो मेरे खुदा होने मे कोई शक नही है और जब पकडा जाता हू, तब बदा बन जाता हू, क्योकि खुदमुख्तारी उस वक्त नही रहती। बादशाह ने उसे छोड दिया।

फिर एक दिन बाजार मे बुल्लेशाह से पूछा—आप कौन हो? बुल्लेशाह ने सहज रूप मे कहा, मैं बादशाह हू। फिर बुल्लेशाह को पकडकर बादशाह के पास ले गये। बादशाह से कहा—यह फकीर पहले खुदाई का दावा करता था, अब बादशाही का दावा करता है। बादशाह ने कहा—बुल्लेशाह तुम कौन हो? बुल्लेशाह ने कहा— मैं बादशाह हू। बादशाह ने कहा—तुम्हारे पास खजाना कहा है? बुल्लेशाह ने कहा—जो बादशाह बहुत सा खर्च करता है, वह खजाना रखता है। हमारा खर्च कुछ नही तो हम खजाना क्यो रखे? फिर पूछा—बादशाह के पास फौज रहती है, तुम्हारे पास फौज कहा है? बुल्लेशाह ने कहा—फौज वह रखता है, जिसके दुश्मन होते है। हमारा तो कोई दुश्मन ही नही है, फिर हम फौज क्या रखें? अब बताओ हमारे बादशाह होने मे क्या शक है? उस दिन बादशाह ने कहा कि आगे इसको कोई न पकडे।

(1)

राग पीलू—ताल कहरवा

कद मिलसी मैं बिरहो सताई नू।
आप न आवे, न लिखि भेजे, भटिट अजेहो लाई नू॥
तैं जेहा कोइ होर ना जाणा, मैं तनि सूल सवाई नू।
रात दिने आराम न मैं नू, खावे बिरह कसाई नू॥
बुल्लेशाह धृग जीवन मेरा, जौलगि दरस दिखाई नू।

(2)

राग मालकोस—ताल तिताला

टुक बूझ कवन छप आया है।
इक नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नामधरा।।
जब मुरसिद नुकता दूर किया, तब ऐनो ऐन कहाया है।
तुसीं इलम किताबां पढ़ दे हो, करे उलटे माने कर दे हो।।
बेमूजब एव लड़दे हो, केहा उलटा वेद पढ़ाया है।
दुइ दूर करो कोई सोर नहीं, हिंदू-तुरक कोई होर नहीं।।
सब साधु लखो कोई चोर नहीं, घट घट में आप समाया है।
ना मैं मुल्ला ना मैं काजी, ना मैं सुन्नी ना मैं हाजी।।
बुल्लेशाह नाल लाई बाजी, अनहद सबद बताया है।

(3)

राग काफी—ताल तिताला

माटी खुदी करें दी यार।
माटी जोड़ा माटी घोड़ा, माटीदा असवार।।
माटी माटी नू मारन लागी, माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहुती माटी, तिस माटी हंकार।।
माटी बाग बगीचा माटी, माटी दी गुलजार।
माटी माटी नू देखन आई, है माटी दी बहार।
हस खेल फिर माटी होई, सौंदी पांव पसार।
बुल्लेशाह बुझारत बूझी, लाह सिरों भौं मार।।

(4)

राग भरों—ताल दीपचदी

अब तो जाग मुसाफिर प्यारे।
रन घटी लटके सब तारे ।।
आवा गोन सराईं डेरे, ।
साथ तयार मुसाफिर तेरे।।
अज न सुनदा कूच नकारे।
कर ले आज कर नदी बला,।।
बहुरि न होसी आवन तेरा।
साथ तरा चल चल्ल पुकारे।।
आपो अपने लाहूँ वोडी, ।
क्या सरधन क्या निरधन बोरी,।।
लाहा नाम तू लेहु समारे।
बुल्ले सुहुदो पैरी एरिये, ।।
गफलत छोड हीला कुछ करिये।
मिरग जतन बिन खेत उजारे।।

रज्जबजी

ईश्वर पद की प्राप्ति का, हेतु मनुज तन पाय।
सद् शिक्षा गह मननकर, श्वास न वृथा गवाय।।

संत दादूजी महाराज के शिष्य मंडली में रज्जबजी का नाम बडे ही आदर के साथ लिया जाता है। दादूजी महाराज की शिष्य शाखा बहुत बड़ी थी। रज्जबजी जाति से पठान थे। इनका पूर्व नाम रज्जब अली खा था। इनका जन्म संवत् 1624 के लगभग माना जाता है। इनका जन्मस्थान राजस्थान के जयपुर से पांच मील दूरी पर सांगानेर ग्राम में हुआ था। सांगानेर छपाई के काम में बडा ही मशहूर ग्राम है। रज्जबजी के पिता आमेर नरेश राजा मानसिंह की फौज में छोटे सैनिक थे।

रज्जबजी जब विवाह के योग्य हुए तो पिता ने उनका विवाह करने का निश्चय किया। लडकी देखी। मंगनी हुई। विवाह आमेर में होनेवाला था। माता पिता तथा रिश्तेदार विवाह की खुशी में थे। विवाह के एक दिन पहले बारात सांगानेर से बडी धूमधाम के साथ चल पडी। बारातियों को दुल्हे के साथ आमेर जाना था। उस समय जयपुर शहर बसा हुआ नहीं था। संत दादूजी महाराज का आमेर के पास ही उन दिनों मुकाम था। जब बारात आमेर के पास आ चुकी तो पता चला की दादूजी महाराज वहीं पर कहीं रहते हैं। रज्जबजी दुल्हे के भेष में कुछ बारातियों को साथ लेकर दादूजी महाराज के निवास स्थान पर जा पहुंचे। संध्या का समय था, दादूजी महाराज ध्यान में बैठे थे। बारातियों ने जाकर संत के दर्शन किए। कुछ देर बैठे। दादूजी महाराज की समाधि लगी हुई थी। समाधिस्थ होने के कारण वह किसी से न बात करते, न कुछ कहते। साथ के लोग बैठे बैठे ऊब गये। कहने लगे चलो संत का दर्शन हो गया। चलने के लिए खडे हो गये। तब रज्जबजी ने कहा—भाई! संत का दर्शन तो हुआ, परंतु न तो उन्होंने हमें देखा न हमने उनसे कुछ वचन-विलास किया। इतनी देर ठहरे तो और भी कुछ देर ठहरो! महापुरुष का ध्यान समाप्त होगा तो वह अपने आप ही बात करेंगे। रज्जबजी के कहने से सभी ठहर गए। ठहरना पडा हो दुल्हे के बिना बरात की शोभा भी क्या? कुछ ही समय में दादूजी का ध्यान समाप्त हुआ। उन्होंने रज्जबजी को देखा और सहजभाव से उनके मुंह से निकल पडा—

रज्जब तैं गज्जब किया, शिरपर बाधा मौर।
आया था हरि भजन को, कर नरक को ठौर॥

बस फिर क्या था? इतने पर ही रज्जबजी को वैराग हो गया और उनकी प्रवृत्ति बदल गयी। सासारिक मोह समाप्त हुआ। जीवन मे नया मोड आया। बारातिया ने रज्जबजी को चलने के लिए मजबूर किया। रज्जबजी ने अपना दुल्हे का सेहरा उतार दिया और अपने छोटे भाई के सामने रखकर कहा—भैय्या! मैं शादी नही करूगा, आजीवन ब्रह्मचारी रहूगा। आप जाओ बडे प्रेम से विवाह करो। रज्जबजी का मन विवाह करने से हट जाने पर माता पिता तथा बाराती लोग एकदम नाराज हो गये। बारातियो मे घबराहट फैल गयी। जितने मनुष्य उतने विचार। कोई दादूजी को ही दोष देने लगा। कोई दादूजी की प्रशसा करने लगा। सभी ने रज्जबजी को समझाया। रात ऐसी ही निकल गयी। दादूजी ने भी अपनी ओर से कह दिया कि रज्जबजी आप शादी करो, सुख से गहस्थाश्रम का निर्वाह करो। रज्जबजी ने एक ही बात सभी को दृढतापूर्वक बताई। उन्होने कहा, चाहे कुछ भी हो जाय, मै इस जन्म म शादी नही करूगा। आखिर उस कन्या का विवाह रज्जबजी के छोटे भाई के साथ हुआ। रज्जबजी आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे।

रामस्नेही सम्प्रदाय के आद्य प्रवतक महात्मा शहापुर निवासी रामचरणदासजी ने अपने वाणी मे ठीक ही कहा है —

दादू जसा गुरु मिले शिष्य रज्जब सा जाण।
एक शब्द में उद्धरा, रही न खेंचा तान॥

रज्जबजी केवल बीस साल की अवस्था मे सवत 1644 मे आमेर मे दादूजी के शिष्य हुए। गुरुदेव के चरणो म अपना जीवन समर्पित करने पर वे निरतर गुरु सेवा मे ही लवलीन रहने लगे। गुरु सेवा, सतसग और ईश्वर भजन उनके जीवन के प्रधान अग बन गये। गुरु सेवा के अतिरिक्त जहा भी कथा-कीतन होता, वहा पर रज्जबजी जाते। सतसग ध्यान से सुनते। सुने हुए विचार आत्मसात करते और वही दूसरे को समझाने का प्रयास करते। दादूजी की वाणी का सग्रह आज जो प्राप्त है, उसे श्रद्धापूवक सगृहीत करने का काय गुरुभक्त रज्जबजी ने ही किया था।

एक दिन एक पंडितजी की कथा चल रही थी। रज्जबजी कथा सुनने गये। पंडित विद्वान था। वह अपने विचार दृष्टांत के द्वारा समझाने का प्रयास करता था। उसकी दृष्टांत पद्धति बहुत ही सुंदर थी। कथा सुनकर रज्जबजी गदगद हो गये। मन में एक विचार आया। क्या मैं भी अपने विचार दृष्टांत द्वारा समझा सकूंगा ? मन उदास हो गया। पहुंचे हुए सद्गुरु को सेवाभावी शिष्य की मनोकामना समझ लेने में देर नहीं लगी। रज्जबजी को उदास देखते ही दादूजी ने पूछा—रज्जबजी आज इतने उदास क्यों ? बात क्या है ?

रज्जबजी ने विनम्र भाव से कहा—गुरुदेव ! मैं अभी-अभी पंडितजी की कथा सुनकर आया हूं। पंडितजी की दृष्टांत शैली बहुत ही सुंदर थी। मेरे मन में विचार आया, क्या मैं भी अपने विचार दृष्टांत देकर व्यक्त कर सकूंगा ?

दादूजी के मन में शिष्य के प्रति करुणा जागृत हुई। उन्होंने रज्जबजी को आशीर्वाद दिया—रज्जब तू चिंता न कर तुझे बहुत अच्छी दृष्टांत शैली प्राप्त होगी। गुरु का आशीर्वाद प्राप्त होते ही रज्जब जी दृष्टांत देने में बहुत ही निपुण हुए। इसी कारण उन्हें सर्वत्र ख्याति मिली।

एक दूरसा आढा नामक चारण था। उसके कवित्व पर बादशाह अकबर खुश थे। जहांगीर ने तो इसे विजय पत्र दिया था। आढा का कहना था कि मेरे साथ जो शास्त्रार्थ में हारेगा, उसे मेरी पालकी ढोनी पड़ेगी और यदि मैं हार गया तो वे सारी चीजें उसे भेंट करूंगा जो मुझे प्राप्त हैं। वह दिग्विजय करता हुआ सांगानेर में रज्जबजी के पास आया। उसने प्रश्न के रूप में एक दोहा सुनाया —

> बावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।
> इतने ऊपर जो कथे, तो मानू कवि ईश ॥

रज्जबजी ने बड़े सुंदर शब्दों में सवाल का जवाब दिया —

> बावन अक्षर सप्त स्वर, गल भाषा छत्तीस।
> इतने ऊपर हर भजन, अन अक्षर जगदीश ॥

रज्जबजी का उत्तर सुनकर दूरसा आढा निरुत्तर हो गया। उसने उसी दिन से रज्जबजी को अपना गुरु मान लिया। रज्जबजी के सत्संग से वह लाभ उठाता रहा। रज्जबजी अधिकतर दादूजी के पास ही रहते थे। कभी-कभी सांगानेर आया-जाया करते थे।

एक बार खाटू ग्राम मे मरूटिये राव ने दादूजी को निमतण दिया। राव के एक मत्री न उसे भडकाया क्यो कि उसके मन मे दादूजी के प्रति कोई आस्था नही थी। दादूजी महाराज अपने शिष्यो के साथ खाटू पधारे। राव ने उनके साथ प्रश्नोत्तर किये। फिर भी अपने मन में विश्वास ना लाये। दादूजी के वापस लौटते समय एक मतवाला हाथी उनपर छोड दिया गया। साथ मे रज्जबजी तथा गरीबदासजी थे। हाथी का रास्ने के लिए रज्जबजी आगे बढ़ने लगे। दादूजी महाराज ने रज्जबजी से कहा—रज्जब अपना राखनहारा तो एक ईश्वर ही है। रज्जबजी पीछे हट गये। हाथी ने दादूजी महाराज के चरणो पर सुड रखकर प्रणाम किया। दादूजी ने अपना हाथ हाथी के मस्तक पर रखा और हाथी शात भाव से वापस लौट गया। राव लज्जित हुआ। उसकी दादूजी के प्रति श्रद्धा बढ़ गयी। उसने दादू से क्षमा मागी।

एक दिन दादूजी महाराज अपन शिष्यो के साथ कही जा रहे थे। रास्ते मे पानी का नाला पडा। नाले मे पानी थोडा था और कीचड ज्यादा थी। दादूजी महाराज न अपन साथियो को पत्थर डालने के लिए कहा, जिसस पैर मे कीचड न लगे। सब शिष्य पत्थर ढूढन लगे। रज्जबजी कीचड में लेटकर बोने—गुरदेव! इस दास के शरीर पर पाव रखकर जाइये। पत्थर की क्या आवश्यकता है? दादूजी महाराज रज्जबजी की गुरु भक्ति से अत्यत प्रस न हुए।

दादूजी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर रज्जबजी न अपने नेत्र सदा के लिए बद कर लिये थे। कई बार सता ने नत्र खोलने के लिए आग्रह किया तो रज्जब जी एक ही बात कहते—सता! अब इस ससार मे मेरे देखने योग्य कुछ रहा ही नही। केवल गुरुदेव का शरीर देखने योग्य था, वह भी नही रहा। अब देखने की ईच्छा ही मन मे नहीं है।

दादू पथ मे बाल कवि सुन्दरदास जी नामक एक सत हुए। इनका रज्जबजी से बडा ही प्रेम था। सुदरदासजी हमेशा रज्जबजी से मिलन के लिए सागानेर आते थे। ब्रह्मलीन होने से पहले दादूजी महाराज ने रज्जबजी से कहा था—रज्जब तुम इस बालक पर विशेष ध्यान रखना! यह होनहार है। रज्जबजी ने सुदरदास जी को काशी मे अध्ययन के लिए भेजा। सभी सता का सुदरदासजी से प्रेम था।

रज्जबजी का देहात सवत् 1746 म हुआ। रज्जबजी 122 वर्ष तक जीवित रहे। इतन दीर्घ जीवन मे ब्रह्म चितन, सत्सग और साहित्य रचना करते रहे।

मानव जीवन की सफलता के बारे में दादूजी महाराज ने अपने साहित्य में कहा है :-

हरिभज साफिल जीवना, परोपकार समाय ।
दादू मरना तहं भला, जहाँ पशु पक्षी खाय ॥

इसी प्रकार का जीवन रज्जबजी व्यतीत करते रहे। रज्जबजी की रचना साहित्य-संपदा का विपुल भण्डार है।

रज्जब-वाणी

बिन सतगुरु समता नहीं आवै, नीच ऊच निगुरा सुद्भाव।
एक ही पवन एक ही पानी, बुद्धि बिन बीच अंतरा ठानी ॥
एक आतम ऐक सरीरा, समझ बिना बड अंतर बीरा।
सॉज सब विधि बक बनाई, दुविधा दुरमति ह रे भाई ॥
सबके नखसिर एक विचारा, एकै सबका सिरजनहारा।
गुरु के ज्ञान माहि सबए कैं, रज्जब अध अजान अनेक ॥
जब लग जीव जाण्या कह, तब लग कछु न जाण।
जब रज्जब जाण्या सबै, जाणि भये अजाण ॥
आतम जो कछु उच्चर, सब अपणा उनमान।
रज्जब अज्जब अकल गति, सो किन्हू नहिं जान ॥
माया माह ब्रह्म पाइये, ब्रह्म मध्यत माया।
फलं सुमन की कामना, रज्जब भेद सु पाया ॥
पल पल अंतर होत ह, पगि पगि पड़िये दुरि।
मन-वचन बीच पड़, रज्जब कहां हजूरि ॥
रज्जब की अरदास यह, और कह कछु नाहि।
मो मन लोजे हेरि हरि, मिले न माया माँहि ॥

एनबुल्ला शाह साहब

टेमय साहब के शिवमदिर के ठीक सामने ऊपर ग्वालियर किले को काटकर एक गुफा बनी हुई थी। यह बात काफी पुरानी है। यह गुफा एनबुल्ला शाह साहब का निवास स्थान था जिसके आस पास प्रकृति ने अपना सौंदय बिखेर रखा था। आप ब्रह्मनिष्ठ सत थे। इनके बारे म विशेष जानकारी उपलब्ध नही। इतना तो जरूर है कि यह सन् 1900 के आसपास विद्यमान थे। जीवन के 80 वर्ष की आयु मे इन्होने अपने नश्वर शरीर को त्याग दिया।

शाह साहब साहित्य प्रेमी भी थे। इन्होने बहुत सी कुडलिया लिखी है। इनका जीवन त्याग का प्रतीक था। केवल सामान्य जनता ही इनके प्रति श्रद्धा रखती थी। यहा तक कि राजा-महाराजाओ की भी इनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। एक दिन ग्वालियर नरेश जयाजीराव सिंधिया ने इनकी सेवा म एक सुदर-सजाया हुआ घोडा तथा दुशाले भेजे। इस फक्कड महात्मा ने उसे स्वीकार नही किया और जवाब म निम्न कुडलिया लिखकर उसने भेजी —

अब क्या चाहिये साधु को, सभी दिया भगवान।
कपडे खाक मसान के, कद मूल फल खान॥
कद मल फल खान, नदी जल पीवत दीनी।
खप्पर दोनो हाथ, गुफा रहने को दीनी॥
विचरन को चारो दिशा, एन भोग को ज्ञान।

कुडलिया पढने पर पता चलता है कि शाह साहब कितनी ऊची साधना मे लीन थे। एक ऊचा चाटीदार टोपा, लम्बा कुरता, पील रग का नीचे कौपीन—यही इनका सादा रहन-सहन था परतु इनके मुखारविंद से निकलनेवाली वाणी हृदय को स्पर्श कर लेती थी।

(1)

और हमारे कौन ह, जाते कहे हुजूर।
दौलत आपहि आप हो, रोम रोम भरपूर॥
रोम रोम भरपूर, सावला साचा साई।
मेरे मन की बात, छपी कछु तुमसे नाही॥
जो चाहे सोई करो, एन हम मजूर।

(2)

जो नर पावे आपको, तो नारायण आप।
आप बिना नर करत है, आप आपनो जाप।।
आप आपनो जाप, आपको पावत नाहीं।
जो पावे नर आपको, तो आप गुसाई।।
एक बिना गुरु ज्ञान के, नर भोगो त्रय ताप।

(3)

तुम नाहीं हम हैं, तुमही हो करतार।
जब हम थे तब तुम नहीं, अब तुम हो मुख्तार।।
अब तुम ही मुख्तार, कि अब वश अपना नाहीं।
चाहे दुःख में राखो, और चाहे सुख माहीं।।
तुम हरि अपन आपसे, 'एन' करत व्योहार।

(4)

जब लगी ठठरी शीश पर, राम नाम है सत्त।
मानस बैठ मसान में, कथ ज्ञान अलबत्त।।
कथैं ज्ञान अलबत्त, रहा न रहैगा कोई।
रहे राम का नाम, जगत में यही सत्त सोई।।
हाथ धोय घर चल दिये 'एन' ज्ञान भयो गत।

(5)

एक ना नव फकीर है, परमहंस निरबान।
दाढ़ी मूंछ मुडावते, भस्म करे अस्नान।।
भस्म करे अस्नान, ओढ़ पिताम्बर साड़ी।
माने एक ही ब्रह्म, तुरक हिंदू से न्यारो।।
भिक्षुक दोऊ दीन के, 'एन' हमारा नाम।

(6)

तीन तरफ है इश्क के, एन काफ अब शीन।
एक बढ़ावत अक्ल को, शनि शरम ल छीन।।
शनि शरम ल छीन, क़ाफ करार बढ़ावे।
येस बरा हो जमो, तभी टुक दरशन पावे।।
तीनों गुण तीनों हरफ, 'एन' लेत है चीन।

लतीफ शाह

महाराष्ट्र की संत-मालिका में लतीफशाह का अनन्य स्थान है। इनके जीवन
के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं। जन्म और मृत्यु से सम्बन्धित
तिथियों का भी कुछ पता नहीं है। इन्हें संत एकनाथजी का अनुग्रह प्राप्त था।
लतीफशाह मुसलमान होते हुए भी प्रभु रामचन्द्र का बड़े प्रेम से भजन करते थे।
वह उनके अनन्य भक्त थे। उनके मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था।
उनके लिए सभी धर्म समान थे। धर्म तो महापुरुषों के बतलाये हुए मार्ग हैं। इन
मार्गों पर चलनेवाला मनुष्य अपनी मंजिल को तय कर सकता है। ईश्वर की राह
पर ले जानेवाले ये दीपस्तम्भ हैं। परन्तु इस बात को समझाने वाले बहुत ही
थोड़े लोग हैं।

कट्टरपंथी मुसलमान लतीफशाह से जलते थे। लतीफ शाह को भी काफिर
समझते थे। कुछ लोगों ने बादशाह से शिकायत की। बादशाह ने लतीफशाह
को बुलाने के लिए सिपाही भेजा। बहुत देर तक राह देखने पर भी जब सिपाही
वापस नहीं लौटा, तो बादशाह स्वयं लतीफशाह के यहां जा पहुंचे। यह सत्संग
का समय था। हजारों लोग लतीफशाह की वाणी सुन रहे थे। लतीफशाह भाग-
वत पढ़ रहे थे। भागवत भक्तिभाव से भरा ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भगवान श्रीकृष्ण
की लीला तथा मर्यादा का दर्शन होता है। यह ग्रंथ भक्ति की मधुर धारा को
प्रवाहित करनेवाला ग्रंथ है। कथा चालू थी ही। बादशाह स्वयं कथा में जाकर
बैठ गये। बादशाह ने चारों ओर नजर घुमाई। देखा, दीवारों पर तरह-तरह
के चित्र लगे हुए हैं। इनमें सभी चित्र हिन्दू देवताओं के थे। इन चित्रों में एक
चित्र बड़ा ही सुंदर था। राधिकाजी भगवान् श्रीकृष्ण को पान दे रही थीं।
इस चित्र को देखकर बादशाह ने लतीफशाह से सक्रोध पूछा—जब राधिकाजी
पान का बीड़ा दे रही हैं, तो श्रीकृष्ण जी उसे खाते क्यों नहीं?

राजा का प्रश्न सुनकर अनन्य भक्त लतीफशाह ने भगवान श्रीकृष्ण के चित्र
के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—हे प्रभो, आप तो भक्त वत्सल हो! राधिका
जी आपकी अनन्य भक्त हैं, इसलिए आप उनका बीड़ा सेवन करो! इतना

कहना ही था कि चित्र के कृष्ण भगवान ने मुह खोला और राधिकाजी ने पान का बीडा बडे आदर के साथ प्रभु के मुह म रख दिया ।

निर्जीव कागज म सजीवता का यह काय देख बादशाह चकित रह गए । बादशाह ने लतीफशाह के चरण पकड लिये । उस दिन से बादशाह लतीफशाह का अनन्य भक्त हो गया ।

सिद्ध चैतन्य और रगनाथ स्वामी निगडीकर द्वारा रचित सन मालिका में लतीफशाह का गौरवपूर्ण उल्लेख है । महाकवि मोरोपत ने सन्मणि माला मे लतीफशाह की मुक्त कठ से प्रशसा की है । मोरोपत ने उसे 'साधु समाप्राण वल्लभा' कहा है । सत तुकाराम और रगनाथ स्वामी की स्तुती का पात्र यह होनेवाला सत सतरहवी शताब्दी के पूर्व हुआ है । लतीफशाह के एक पद म कबीर और मीराबाई का भी उल्लेख है । इस पद से यह निश्चयपूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि कबीर मीराबाई के बाद और तुकाराम रगनाथ स्वामी के पूर्व सोलहवी शताब्दी म लतीफशाह का काल निश्चित होता है ।

लतीफशाह की रामभक्ति साम्प्रदायिक बधनो के पर थी । राम कृष्ण विट्ठल एक ही परमतत्व के नाम है, ऐसा उनका विचार था । लतीफशाह की समाधि शोलापुर जिले म मगलवढे ग्राम म भुईगल्ली (वार्ड न० 3) म है धूलिया के समर्थ वाग्देवता मदिर म लतीफशाह के तीन हिंदी पद तथा एक मराठी पद है । इन गिने पदो म भी लतीफशाह की भक्ति की प्रगाढता और परमार्थिक उच्चता स्पष्ट हो जाती है । इ हे श्रद्धालु भक्त बडे चाव से गाते हैं ।

राम नाम नौबत बजाई ।।
पहिली नौबत नारद तुबर । दुसरी नामा कबीर सुनाई ।।
तिसरी नौबत सुग्मा की प्रहलाद की जिने राखी बडाई ।।
चौथी नौबत जन जसवत को । धन्ना जाट और मीराबाई ।।
कहत लतीफ सुन मेरे भाई । उनक ये कुछ तनक बजाई ।।

श्रीराम भक्त लतीफजी को रामनाम के साथ-साथ श्रीरामभक्त का सग भी प्रिय है जो स्वय भवसागर पार कर दूसरो को भी पार कराते है ।

राम नाम तिन कु, हमारो राम राम तिन कु।
जो सब प्राणी हरि के उपासक। आप तरे तारे औरन कु॥
आशा मनसा पचही प्राण। छोड़ चले उन कु॥
कहे लतीफ म पूजू उन कु। सुमरत मुरलीधर कु॥

संतों की संगति में परमसुख का आनंद लेने के कारण लतीफजी को परमार्थ का रास्ता भूली हुई जनता पर दया आती है। भ्रांति में पड़े हुए दंभ के कारण आत्मवंचना करनेवाले लोगों के लिए लतीफजी कहते हैं —

भूला जग आधा, बाबू भूला जग आधा।
ऊपर होवे अंदर मला, जाय बारानसी गंगा॥
मठ के अंदर साधु की निंदा, बडा गुन्हेगार बंदा॥
कहे लतीफ म फकरी बंदा, लगा दुनी दुचंदा॥

संत यारी साहब

इनका पूर्व का नाम यारमुहम्मद था। यारी साहब का पूर्व सम्बन्ध किसी शाही घराने से बतलाया जाता है। अपने ऐश्वर्यमय जीवन का परित्याग करके यह फकीर बन गये थे। जब इनका सत्संग बीरू साहब के साथ हुआ तो यह सत मत में दीक्षित हो गये और यारी साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके जीवन की घटनाओं का अधिक विवरण नहीं पाया जाता। इनके आविर्भाव का समय बावरी पंथ की वंशावली के अनुसार विक्रम संवत् 18 वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। इनके पांच शिष्य थे केशवदास, सूफीशाह, शाहनशाह, हस्तमुहम्मद और बूला साहब। यह गाजीपुर के निवासी थे, जहां इस पंथ की एक गद्दी अभी तक प्रतिष्ठित है। यारी साहब की रचनाओं का एक छोटा सा संग्रह रत्नावली के नाम से प्रसिद्ध है।

साखी

बाजत अनहद बाँसुरी, तिरबेनी के तीर।
राग छतीसों होइ रहे, गरजत गगन गंभीर॥
आठ पहर निरखत रहौ, सनमुख सदा हजूर।
कह यारी घर ही मिलै, काहे जाते दूर॥

पद

(1)

हमारे एक अलह पिय प्यारा है ॥ टेक॥
घट घट नूर मुहम्मद साहब, जाका सकल पसारा है॥
चौदह तबक जाकी रोसनाई, झिलमिल ज्योति सितारा है।
बेनमून बेचून अकेला, हिन्दू तुरक से न्यारा है॥
सोई देख दरस निज पायो, सोई मुसलिम सारा है।
आवै न जावै मरै नहिं, जीव यारी यार हमारा है॥

(2)

बिरहिनी मंदिर दियना बार ॥टेक॥
बिन बाती बिन तेल जुगति सो, बिन दीपक उजियार ॥
प्राण पिया मेरे गृह आयो, रचि रचि सेज सवार ।
सुखमन सेज परम तत रहिया, पिय निर्गुन निरकार ॥
गावहु री मिलि आनंद मंगल, यारी मिली के यार ।

(3)

झिलमिल झिलमिल बरसत नूरा, नूर जहूर सदा भरपूरा ।
रुनझुन रुनझुन अनहद बाजे, भवर गुंजार गगन चढ़ि गाजे ॥
रिमझिम रिमझिम बरसत मोती, भयो प्रकाश निरंतर ज्योति ।
निरमल निरमल निरमल नामा, कह यारी तह लियो विसरामा ॥

(4)

बिन बदगी इस आलम में, खाना तुझे हराम है रे ।
बदा कर सोई बदगी, खिदमत में आठो जाम है रे ॥
यारी मौला बिसारि के, तू क्या लगा बेकाम है रे ।
कुछ जीत बदगी कर ले, आखिर को गोर मुकाम है रे ॥

(5)

गुरु के चरण की रज ले के, दोउ नन के बीच अजन दिया ।
तिमिर मेटि उजियार हुआ, निरकार पिया को देख लिया ॥
कोटि सूरज तह छिपे घने, तीनो लोक धनी धन पाइ पिया ।
सतगुरु ने जो करी कृपा, मर के यारी जुगजुग जिया ॥

वाजिन्दजी

वाजिन्दजी दादूजी महाराज के एक सौ बावन शिष्यो मे से थे। वह तीर मे एक दिन किसी हिरन का शिकार कर रहे थे। तीर चलाने के पहले उनके हृदय म करुणा का उद्वेग उत्पन्न हुआ। इससे उनके हृदय म परिवर्तन हुआ। उन्होंने वहीं तीर-कमान तोडकर फेंक दिया और सद्गुरु की तलाश मे निकल पडे। दादूजी से उपदेश ग्रहण करके वह साधना म लीन हो गये। वह जाति से पठान तथा मजहब से मुसलमान थे। दादूजी का शिष्यत्व ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने जाति और धर्म का सर्वथा परित्याग कर दिया।

वाजिन्द जी की रचना छोटे छोटे चौदह ग्रन्थो म है। इनके ग्रन्थो के नाम इस प्रकार हैं (1) ग्रन्थ गुण उत्पत्ति नामा (II) ग्रन्थ गरज नामा। (III) ग्रन्थ प्रेम नामा। (IV) ग्रन्थ गुणनाम माला आदि। इनके ये ग्रन्थ प्राय दोहा चौपाई, छदो म है। इनकी रचना म हिन्दी भाषा का प्रयोग बहुत विशुद्ध रूप म हुआ है।

वाजिन्दजी का काव्य

(1)

एक राम को नाम लीजिये नित्त रे। और बात वाजिन्द चढ़े नहिं चित्त रे।।
बहे धोयक हाथ आपणें जीव सू। हरि हां दास आज तज और बध ह पीवसू।।

जग के औरो देव निजर नहिं आव ही। बिना आपणें इस सील नहीं नावही।।
साध रहे सिर टेक प्रभु के पोर सू। हरि हा! दास पास दिवान बिन्ध कयू और सू।।

अविनासी की ओट रहत ह रन दिन। बिना प्रभु के पाय भज नहिं एक छिन।।
जैसे जग के जीव जरत ह धूप में। हरि हा! दीपक ले दोऊ हाथ परत ह कूप में।।

भगत जगत में चोर जानिए ऐन रे। इवास शरद मुख जरद निर्मले नैन रे।।
दुरमति गई सब दूर निकट नहिं आव हीं। हरि हो साध रहे मुखमौनक गोविन्द गावहीं।।

कुंजर कीरी आदि सब सू हेत ह, हिरद उरग ग्यान दुःख नहीं देत ह।
दया मया मुख मीत अल्यो नहि बोलि ह, हरि हा! इन साधन के साथ
नाथ ज्यू डोलि ह॥

कहा वरणें वाजिद बडाई जन की, काम कल्पना दूर गई सब मन की।
अष्ट सिद्धि नव निद्धि फिरत ह साथ रे। हरि हा दुनिया रंग कसुम्ब गहे क्यू
हाथ रे॥

(2)

सतगुरु शरणें आयके तामस त्यागिये।
बुरी भलो कह जाय ऊठ नहिं लागिये॥
उठ लाग्या में राड राड में मोच ह।
हरि हा जाघर प्रगट कोध सोई घर नीच ह॥
कहि कहि वचन कठोर खरठ नहिं घोलिये।
सीतल साना स्वभाव सबन सू बोलिये॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये।
हरि हा, बलतो में सुण मीत न पूला दीजिये॥

बषनाजी

दादूजी महाराज के बावन प्रधान शिष्यों में बषनाजी अन्यतम थे। वह नरायणा ग्राम के रहने वाले थे। नरायणा ग्राम सांभर से तीन कोस पूर्व से दक्षिण की ओर बसा हुआ है। वह इसी ग्राम में पैदा हुए थे और यहीं उनका देहावसान हुआ। इनके जन्म के सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी नहीं है। इन्होंने दादूजी महाराज से उपदेश लिया था। दादूजी महाराज सांभर में सं० 1620 से 32 तक ठहरे थे। बषनाजी का जन्म 1600 से 1610 के बीच माना जाता है। वह मुसलमान थे और जातीय अभिमान से मुक्त थे। दादूजी का उपदेश लेने पर भी वह गृहस्थ ही रहे। बषनाजी का देहावसान दादूजी के बाद हुआ। दादूजी के वियोग में एक पद गाया गया है, उससे दादूजी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा परिलक्षित होती है। वह पद निम्न प्रकार से है —

> बीछड़या राम सनेही रे, म्हारे मन पछतावो ये हो रे।
> बिलपी सखी सहेली रे, ज्यों जल बिन नागर बेली रे॥
> था मुलकनि की छबि छोजी रे, म्हारे र गई हिरदा माहीं रे।
> को ऊहि उनिहारे नाहीं रे, हूं ढूंढि रह्यो जग माहिं रे॥
> सब फीको म्हारे भाई रे, मडली को मडण नाही रे।
> कूण सभा में सोहे रे, जाकी निमल बाणी मोहे रे॥
> भरि भरि प्रेम पिलावे रे, कोई दादू आणि मिलावे रे।
> बषना बहुत बिसूरे रे, दरसन के कारण झूरे रे॥

इस पद से यह पता चलता है कि बषनाजी दादूजी महाराज के देहावसान के समय मौजूद थे। संभव है बषनाजी 1660 से 1680 के बीच में ब्रह्मलीन हुए होंगे। इनका रचना काल 1640 से 1670 तक समझा जाता है।

बषनाजी के जीवन की दो घटनाएं इस प्रकार हैं। बषनाजी की आवाज बहुत सुरीली थी। उन्हें गाने का शौक भी था। वह साधारणतः मित्र मंडली में बैठकर मनोविनोद की दृष्टि से गाया करते थे। एक बार वह गीत गा रहे थे। दादूजी वहीं से गुजर रहे थे। बषनाजी के उस गीत का भाव अच्छा रहा था। दादूजी के मन में आया कि यह व्यक्ति जिस प्रेम से तल्लीन होकर गीत गा रहा है, उस

प्रेम से तल्लीन होकर परमात्मा का गुणानुवाद गावे तो कितना अच्छा होगा। वाद मे शिष्य वन जाने पर दादूजी ने यही उपदेश दिया। उनके उपदेश से स्थिति वदल गयी और वपनाजी ईश्वर का गुणानुवाद करने लगे। इसकी पुष्टि उन्ही के शब्दों में —

म्हारे गुरां कहयो सोई कर स्यू हो।
खार समद में मीठो बेरो कर सुध घडल भर स्यू हो॥

दूसरी घटना है दादूजी के पश्चात गरीबदासजी नरायणा म विराजमान थे। अजमेर जाते समय जहांगीर ने नरायणा ठहरकर उनकी परीक्षा करने का विचार किया। जहांगीर ने काजी और पंडितों से यह प्रश्न किया कि परमात्मा ने यह सृष्टी किस समय रचि। इस प्रश्न का उत्तर वषनाजी ने जैसा दिया वैसा ही उन्होंने अपने वाणी म संकेत किया —

प्रश्न : काजी पण्डित बूझिया, किन ज्वाब न दीया।
वपना वरिया कोण थी, जब सब कुछ कीया॥

उत्तर : जिहि वरिया यहु सब हुआ, सो हम किया विचार।
वपना, वरियां खुशी की, करता सिरजनहार॥

वपनाजी का उत्तर बहुत ही संगतपूर्ण है। चेतन का संसर्ग प्रकृति से होता है, तब सत्व गुण की अभिवृद्धि होती है। सत्व गुण को आनन्द रूप माना गया है। वपनाजी गवये थे। ग्राम्य भाषा म जीवन के प्रश्न को सुलझाने का महात्माओ का यह प्रयास हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की बात है।

साखी

दूढं दीप पतंग नैं, तो वपना विरद लेआई।
दीपक मांहे जोति है, तो घणा मिलगा आई॥
मस्या न फूटैं चिणग न छूटे, जरणा कहिये ताहि।
वपना कहै समाई तिहि म, सो बोलि बिगूच नाहि॥
अठसठि पाणी धोइये, अठसठि तीरथ न्हाई।
यहु वपना मन मच्छ की, अजौं कोलाधि न जाई॥
जिहि वरिया यहु सब हुवा, सो हम किया विचार।
वषना वरिया खुशी की, करता सिरजनहार॥
अणदीठे जोलू कर रे, मो मन बारम्बार।
असल फूटा क्यार ज्यू, म्हारे नेण न पड धार॥

शाह अली कादर

मराठी संत काव्य के क्षेत्र में मुसलमान कवियों ने जिस प्रकार महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, उसी तरह मराठी शायरी के क्षेत्र में भी मुसलमान कवि आगे रहे हैं। कलगी तुर्रे की शायरी में शक्ति पक्ष के अग्रणी के रूप में शाह अली का नाम मशहूर है। इस शाह अली का जीवन चरित्र आज उपलब्ध नहीं, परंतु इसका शिष्य सम्प्रदाय आज भी महाराष्ट्र व मराठवाडा में है। शाह अली कादर पेशवाई के समय में मराठवाडा में पैदा हुए ऐसा अनुमान है। तुरनगीर तुर्रेवाले का प्रतिस्पर्धी होने के कारण उनकी विशेष ख्याति है। दादू बापू नामक शायर ने एक मुजरे में "शाह अली कादर उर्फ पर कलगी निशान फड़के जरी।" ऐसा उल्लेख किया है जिससे उसका पूरा नाम 'शाह अली कादर' मालूम होता है।

सूफी मत और कलगीवाला की विचार सूत्रों में साम्य होने के कारण या कुछ सूफी सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा कलगी तुर्रे की आध्यात्मिक चर्चा में रस लेने के कारण, सूफीमत का आध्यात्मिक शायरी पर—विशेष रूप से कलगीवाला की रचनाओं पर—विशेष छाप दिखाई देती है। कलगी और सूफी दोनों पंथ अद्वैतवादी हैं। कलगीवाला ने कुछ हिंदी छंद लिखे हैं, जिस पर उर्दू भाषा का खूब प्रभाव पड़ा है, जिसे मुसलमानी छंद भी कहा जाता है। जैसे —

कहो बिसमिल्ला सबका मालिक अल्ला है।

या

पढ़ो तुम कलमा महमद का।
इस कलमे का पड़े उज्याला उमेद रसूल का।।
कलमा का यह है रोशने।
इशर के दिन तुझे पूछेंगे करो बयान।।
कलमा पढ़ो ओ जिसने।
जन्नत ह में मखमल हाक उठे रोशने।।

शाह अली की परम्परागत शायरों ने शाह शैली की कीर्ति ध्वजा को आगे बढ़ाया है।

शाह अली ऊस्ताद कहे, जा सतगुरु के चरण धरो।
शाह अली मुरशद कहे ॥
शाह अली ऊस्ताद वीर, हमारे लेवन सरिन। रे।
शाह अली की चोट चली, ला' ग्रालो' या चमार का ॥
तुमे पकड़कर बकरा बनाऊ, शाह अली के गुन घर का।
तुकनगीर पर सवाई सोटा, बाजे शाह अली फकीर का।
शाह अली शायर खुद हू ग्यानी, सवाल सुनी रणजीत सिंग का ॥

शाह अली प्रतिभा सम्पन्न शायर था। उसने नक्ली शायरों को अपनी कविता द्वारा खूब लताड़ा है।

छंद पराये चुरा ला, अपनी छाप लगाते हैं।
अगरचे ऐसे कुरों को, हम आइना दिखलाय तो क्या ॥
अंधे को आइना दिख, ये समझ में आना मुश्किल है।
सिवा इल्म के किताबो से, इह गाना मुश्किल ।
लाख बड़ कायर सूरो से, फतह का पाना मुश्किल है।

शाह अली सूफी मतानुयायी होने के कारण भगवान श्रीकृष्ण के प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे। श्रीकृष्ण के मुरलीनाद का विशेष वर्णन करनेवाले दो व्यक्ति हैं जिनके पद सुंदर आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत हैं —

काला कृष्णजी खड़ा जमुना पे, जिधर खड़ी सब ब्रजबाला।
बालापन में बिरह की ज्योत, जगावे वो नंदलाला ॥
लाला नंद का बजा के बंसी, बंसी में जादू डाला।
डाला जादु मोहन ने, धर दी गले में मोहनमाला ॥
माला गल में डाल चकोर, चित चोट लगी करन वाला।
चाला करने लगा और, मार दिया मोह का भाला ॥
भाला भयभीत लगा सखी री, जरा नहीं देखा भाला।
काला कृष्णजी खड़ा जमुना पे, जिधर खड़ी ब्रजबाला ॥

मुरली का नाद सुनकर गोपालबाला सुधबुध भूल गयीं। शाह अली ने गोप-हृदय का वर्णन कितना अच्छा किया है। मुरली का दिव्य नाद सुनकर गोपियों की भ्रांति नष्ट हुई है।

चल जमुना के तीर, बाजत मुरली री, मुरली री ॥धृ०॥
मुरली सुन कान्हा को नीकी, नगर नारी सगरी चौंकी ॥
सुध न रही वाके तन की, मगन भई नारी गोकुल की।
अब तुम सुनो री, सुनो री, ॥
सगरी चली जल जमनाकु, सिर पर घगरी ले पनियाकु।
हँसती चली छोड लडकन कु, टेर सुन मुरली की मनकु ॥
व्याकुल भई री, भई री।
कृष्ण अवतार विष्णुजी के, नित वो सेवा सभुजी के।
छंद बजावत मुरली के, चरवया गो और बछरन के ॥
वृंदावनमो री, वनमों री ॥
जब शंकर की किरपा भई, तब कान्हा मुरली बजाई।
शाह अली कहते, भ्रम गई, भ्रांत मनकी री, मनकी री ॥

दरिया साहब

(मारवाडवाले)

भारतवष म दरिया साहब के नाम से दो प्रातो म सत हुए हैं। एक का ज म मारवाड (राजस्थान) म हुआ तो दूसरे का बिहार म हुआ। दोना सूफी सम्प्रदाय के सिद्ध साधु थे। हिंदू और मुसलमान दोनो उनका सम्मान करते थे। दोना महात्माओ के इष्ट और वाणी भिन्न हैं। दोना की वाणियां उच्च कोटि की हैं और अपने ढग से निराली हैं। मारवाडवाले दरिया साहब बिहारवाले दरिया साहब के दो वष पीछे पदा हुए और गईस वष पहले मृत्यु को प्राप्त हुए। दोनो महात्मा मुसलमानी माता क गभ स पैदा हुए। मारवाडवाले दरिया साहब की माता धुनियाइन थी और बिहारवाले की दरजिन। दोनो शब्दमार्गी थे। दोनों एक ही समय मे रहे। बिहार के दरिया साहब के पथवाले दरिया साहब मारवाडवाले क पथवाला से गिनती म अधिक हैं।

दरिया साहब मारवाडवाले का ज म मारवाड के जैतरन नामक स्थान म सन् 1676 ई० मे एक धुनिया मुसलमान परिवार म हुआ था। अपनी जाति का उल्लेख उ होने अपनी वाणी में इस प्रकार किया है —

> जो धुनिया तौ भी म राम तुम्हारा।
> अधम कमीन जाती मतिहीना, तुम तो हो सिरताज हमारा॥

इनके पूवज हिंदू थे, परन्तु आगे चलकर उ होने मुस्लिम धम को स्वीकार कर लिया था। उस समय इस श्रेणी के हिंदू या मुसलमान किसी भी व्यक्ति को धम की साधना का माग प्राप्त करने का अवसर नही मिलता था। उ होने स्वय लिखा है 'नाह था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान'

प्रारम्भ म वह समाज द्वारा तिरस्कृत थे। जब वह सात वर्ष के थे तब इनके पिता का स्वगवास हो गया। उसके बाद इनका लालन पालन [दादी कमीरा के घर होने लगा। कमीरा बड़ी गरीब औरत थी। इनके नाना का नाम कमीच था। उसके सभी सम्बन्धी निरक्षर, परन्तु भक्तिरस म तल्लीन थे। उनके घर म मीरा की भक्ति तथा गीता के प्रति गम्भीर अनुराग था। दरिया साहब का बचपन से ही भक्ति की ओर

झुकाव था। दरिया साहब पढ़े लिखे नहीं थे। भक्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होने की दृष्टि से दरिया साहब ने मुसलमान मुल्लाओं तथा हिंदू पंडितों की शरण ली। परंतु किसी ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। आखिर इस बात का उन्होंने निश्चय किया कि इनके पास इस दृष्टि से देने योग्य कुछ भी नहीं है। इसलिये उन्होंने जाना बंद कर दिया।

जो मानव सच्चे लगन से परमार्थ के पथ पर चलता है उसे एक न-एक दिन पथ प्रदर्शक मिल ही जाता है। सहज रूप से पता चलने पर एक दिन दरिया साहब प्रेमजी नामक संत के पास चले गये। संत प्रेमजी बीकानेर के पास खियानसर में रहते थे। प्रेमजी दादूदयाल के शिष्य थे। कुछ भक्तों का विश्वास है कि दादूदयाल ही दरिया साहब के रूप में फिर से प्रकट हुए। दरिया साहब के पंथ के लोगों का विश्वास है कि—

> देह पड़िता दादू कह, सौ बरसा इक संत।
> रैन नगर में परगट, तारै जीव अनंत॥

उपर्युक्त दोहा दादूजी ने दरिया साहब के जन्म के सौ वर्ष पहले कहा था। प्रेमजी नामक संत को दरिया साहब ने अपना गुरु मान लिया। प्रेमजी सिद्ध महात्मा थे। उनकी साधना के आदिगुरु थे साधक श्रेष्ठ दादूदयाल। संत प्रेमजी के ससंग में दरिया साहब दादूदयाल के भावों से भरपूर हो उठे। कुछ भक्तों का कहना है कि दरिया साहब दादूजी के अवतार थे। उन्होंने रैन गाँव में अपनी कुटिया बनाई और फिर जन्मभर इसी गाँव में रहे।

इस समय बख्तसिंहजी मारवाड़ के राजा थे। कहा जाता है कि महाराज बख्तसिंह असाध्य रोग से बीमार थे। इलाज बहुत किया गया, कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर बख्तसिंह दरिया साहब के पास गये। उन्होंने दीनता से प्रार्थना की। दरिया साहब ने दया करके अपने शिष्य सुखरामदास के द्वारा उपदेश दिया। बख्तसिंह ठीक हो गये।

दरिया साहब को राम का साक्षात्कार हो जाने पर उनके ज्ञान चक्षु खुल गये। यह सभी पदार्थों में राम का दर्शन करने लगे। दरिया साहब की वाणी द्वारा उनके जीवन और उनकी साधना का इतिहास और क्रम विकास साफ-साफ मालूम होता है। जब दरिया साहब सत्य की खोज में निकले तो, उन्होंने देखा कि सभी अपनी अपनी सम्प्रदायिकता की संकीर्णता को लेकर व्यस्त हैं। किसी का सत्य के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ है।

दरिया साहब (मारवाड वाले)

दरिया साहब बड़े सिद्ध महात्मा हुए। हिंदू और मुसलमान दानो सम्प्रदाय के लोग उनके उपदेशा द्वारा आकर्षित होकर भक्त हुए। सन 1758 ईसवी म 82 वर्ष की अवस्था मे उन्होंने शरीर त्याग दिया। इनके पथ के भक्त लोग आजकल अगहन की पूर्णिमा को उनकी पुण्य तिथि मनाते हैं। इस पथ के हजारा आदमी मारवाड मे है। इनकी वाणी के कुछ अश इस प्रकार हैं —

पूरनहारा पूरसी, कलप मतभाई ।।टेक।।
नाम भरोसा राखिय, अनित नहिं कोई ।।
जल दिर व आकास से, कहो कह से आव ।
बिन जतना ही चहु दिसा, वह चाल चलाव ।।
चात्रिक भूजल ना पिव, बिन आहार जीव ।
हर वाही को पूरव, अतर गत पीवें ।।
राजहस मुक्ता चुग, कुछ गाठ ना बाधे ।
ताको साहेब देत ह, अपनो व्रत साध ।।
गरभवास में आयकर, जीव उधम न करही ।
जानराय जान सब, उनको वहिं भरहि ।।
तीन लोक चौदह भुवन, कर सहज प्रकासा ।
जाक सिर समरथ धनी, सोच क्या दासा ।।
जबसे यह बसक बना, सब समझ बनाई ।
दरिया विकल्प मेट के, भज नाम सहाई ।।
आदि अनादि मेरा साई ।।टेक।।
दृष्ट न मुष्ट ह अगम अगोचर ।।
यह सब माया उनकी माई ।
जो बनमाली सींच मूरा, सहजें पिव डाल फल फूल ।
जो नरपति को गिरह बुलाव, सेना सकल सहज ही आव ।।
जो कोई कर भान प्रकास, तो निसतारा सहजहि नास ।
गरुड पख जो घर में लाव, सप जाति रहने नहिं पावै ।।
दरिया सुमरि एकहि राम, एक राम सार सब काम ।

कमाल साहब

महात्मा कबीर उच्चकोटि के महात्मा थे। जनश्रुति के अनुसार उनको एक लड़का तथा एक लड़की थी। लड़के का नाम कमाल था और लड़की का नाम कमाली। कबीरजी के प्रभाव से कमाल के हृदय में बचपन से ही प्रभु के प्रति प्रेम भक्ति उत्पन्न हो गयी थी। कमाल साहब ने अरबी और फारसी भाषा की शिक्षा मीर तकी साहब से पायी थी। मीर तकी फारसी और उर्दू के प्रसिद्ध कवि थे। वह सूफी विचार के थे। बादशाह सिकन्दर लोदी के पीर थे। कमाल साहब के आध्यात्मिक गुरु तो कबीर साहब थे, परन्तु मीर तकी के सान्निध्य के कारण कमाल साहब पर मुस्लिम धर्म की पक्की छाप पड़ गयी थी, इसी कारण उनका झुकाव इस्लाम धर्म की ओर अधिक रहा। वैसे कमाल साहब मस्त रहते थे। संत कबीरजी तथा कमाल के सिद्धांतों में मतैक्य नही था। हो सकता है कि संत कबीरजी के हिंदू मुस्लिम एकता का विचार कमाल साहब को पसंद न हो। इसीलिए शेख तकी से अलहदा रहने की इजाजत, उन्होंने ली थी। वह जौनपुर में रहते थे।

वैसे कमाल श्रेष्ठ दर्जे के संत थे। स्त्री जाति की ओर उन्होंने जीवन पर्यंत आंख उठाकर भी नही देखा। धन से उन्हें घृणा थी। निंदा-स्तुति में समान रहते थे। यद्यपि सत्संग में वह सर्वोच्च थे, पर इस्लामी विचारों के कारण कबीर साहब की गद्दी इनको न मिली बल्कि वह धर्मदासजी के हिस्से में गई जिस पर आज भी धर्मदासजी की संतानों का कब्जा है।

जनश्रुति के अनुसार कमाल साहब कबीरजी के पुत्र थे। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इनके जन्म तथा जाति के बारे में कुछ भी पता नही चल सका। कहा जाता है वर्षा के दिन थे। गंगा में बाढ़ आने के कारण वह जोरों से बह रही थी। प्रयाग के पास एक टीले पर मीर तकी और कबीर साहब बातचीत करने बैठे थे। सहज दरिया की तरफ ख्याल गया। देखा एक सुंदर बालक पानी की तेज धारा में बह रहा है। मीर साहब के मन में दया आयी। उन्होंने मन में सोचा कि इसे बचाना चाहिये। कबीर साहब से उन्होंने कहा कि इस बालक को बचाना चाहिये। कबीर साहब ने कहा कि यहां कोई तैराक तो है नही, जो

इस तेज पानी की धारा मे घुसकर इस बालक को निकाल लाये। अगर हिम्मत है ता मानसिक शक्ति से इसे इधर खीच लीजिये। मीर साहब ने आखें बन्द की। वह अपने पूर मनोबल से उसे खीचने लगे। उनके इस प्रयोग से बालक बहुत दूर तक खिचा, पर अत म मीर तकी थक गये। उनकी हिम्मत टूट गयी। खीचा हुआ बालक वापस जाने लगा। मीर साहब ने कहा—कबीरजी, मैं थक गया हू। अब आप अपनी ताकत लगाइये। अब आपकी बारी है। कबीर साहब ने तुरत अपनी सकल्प शक्ति का प्रयोग किया और थोडी ही देर म उस बालक को किनारे पर लाकर छोड़ दिया। देखा तो बालक का शरीर फूला हुआ था। सास बन्द हो चुकी थी। दोनो ने उसे उलटा कर जल निकाल दिया। कबीर साहब ने परकाया में प्रवेश किया। उससे उसके शरीर मे प्राण का सचार हो गया। शरीर म जान आयी और बच्चे ने आँखें खोल दी। कबीर साहब उस बच्चे को घर ले आये। कबीरजी की पत्नी माई लोई ने उसका पालन-पोषण किया। बडा होने पर वही बालक कमाल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह है कमाल साहब के कबीर के औरस पुत्र होने की घटना।

अभी कमाल साहब उम्र मे छोटे ही थे। बचपन मे बच्चे आपस मे खेलते ही हैं। उम्र उस समय केवल छ सात वर्ष की होगी। वह लगोटी पहनकर समवयस्क बच्चा मे खेल रहे थे। लगोटी बार-बार खुल जाती थी। कबीर साहब बैठे बैठ बाल-लीला देख रहे थे। कबीर साहब ने कहा—बेटा कमाल! लगोटी कस के बाध। बार-बार खुलना अच्छा नही। बालक कमाल को यह शब्द खटके। कमाल ने लगोटी कस ली और कहा—पिता ने आज मुझे लगोटीबन्द बना दिया। उसी दिन से उनका वैराग्य हो गया। ससार की सब वस्तुओ से वह उदासीन रहने लगे। अखण्ड ब्रह्मचय में तल्लीन रहकर उन्होने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। जिस दिन से कबीर साहब ने इन्हें लगोटी कसने की आज्ञा दी थी उसी दिन से इनके मन मे पूर्णरूप से वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वह सी की और आग्र उठाकर भी नही देखत थे। हर समय वह मस्ती मे रहते थे।

एक दिन एक महाजन बहुत सा धन लेकर कमाल साहब के पास आया। वह कमाल साहब को धन भेंट करना चाहता था। कमाल साहब ठहरे मस्त फकीर, उन्होने धन को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। रात को जब वह नीद म थे तो किसी ने एक कीमती हीरा उनकी पगडी मे बाध दिया। कमाल साहब को पता ही नही था। कुछ दिन बाद कमाल साहब काशी पहुचे। काशी तक प्रेमी

लोग उन्हें पहुचाने आये थे जिसमें वह महाजन भी था। जब कमाल साहब कबीरजी के पास पहुचे तो देखा कि पगडी में गाठ बधी हुई है। कबीरजी ने पगडी उतार ली। गाठ खोलकर देखा तो उसमें बहुमूल्य हीरा था। कबीर साहब को क्रोध आया। बोले—बेटा कमाल! तूने यह क्या किया? तुझे तो वैराग्य की शिक्षा दी और तू धन इकट्ठा करने के काम में लगा है। जा, तू हमारे काम का नहीं। हमारे नाम को तू बदनाम करने वाला है। आगे तेरा वंश नहीं चलेगा। इस सम्बन्ध में यह साखी प्रसिद्ध है —

नाम साहिब का बेचकर, घर लाये धन माल।
बूडा वंश कबीर का, जन्मे पूत कमाल ॥

कमाल ने विनय की हाथ पैर जोडे। उसने कहा—पिताजी मुझे इस बात की खबर नहीं। महाजन पास में था। उसने कहा—महाराज यह मेरी ही करनी है। महाजन ने सफाई दी। कबीर साहब ने क्षमा तो कर दिया, परन्तु सच्चे सन्त के मुह से जो शब्द निकल जायें, वह असर करे बिना नहीं रहते। इतने उच्च कोटि के महात्मा होते हुए भी कमाल साहब से किसी ने लाभ नहीं उठाया। इस तरह उनकी दीक्षा उन्हीं के साथ चली गई।

एक दिन एक कोढ़ी बडी दूर से आया था। उसने कबीरजी के मकान के पास जाकर कबीर साहब का पता पूछा। कमाल वहा पर खेल रहे थे। वह बोले—पिताजी तो बाहर गये हैं। कितने दिनों बाद लौटेंगे, पता नहीं? अगर कोई खास काम हो तो मुझे बता दो। मैं उनसे कह दूगा। कोढी की आखो में आसू आये। वह कहने लगा—मैंने सुना है कि सच्चे संतो की केवल कृपा दृष्टि से पापो का नाश हो जाता है। जनता जनार्दन के मुह से कबीर साहब की बडी प्रशसा सुनी है। इसी दृष्टि से मैं आया था कि उनकी कृपा दृष्टि से मेरा कष्ट दूर हो जाय। परन्तु क्या करु? भाग्य ने यहा भी ठोकर खायी। घर जाना और फिर वापस आना मेरे लिए कठिन है। मैं कई दिनों बाद काशी से चलकर आया हू। अब कहा जाऊ क्या करु?

उस कोढी की दीन दशा देखकर कमाल के मन में दया उमड पडी। कमाल ने कहा—अगर केवल इतना ही काम है तो मैं उसका उपाय बता देता हू। सच्चे हृदय से केवल तीन बार रामनाम का उच्चारण करने से आप अच्छे हो जाएगे।

उसने ऐसा ही किया। थोड़ी देर में उसके सारे ज़ख्म सूख गये। वह अच्छा होकर खुशी-खुशी अपने घर चला गया। कबीर साहब जब घर लौटे तो कमाल साहब ने बड़े गर्व के साथ अपने किये हुए काम का बखान किया। बच्चों का स्वभाव होता ही है कि जब कोई विशेष काम उनके हाथ से हो जाता है, तो वे खुशी से माता पिता को अवश्य सुनाते हैं। कबीर साहब ने इस बात को सुनकर उलटा मुंह बिगाड़ लिया। गुस्से में आकर बोले—तूने राम के नाम का प्रभाव ही जाना। नाम में इतना रहस्य छिपा हुआ है कि तीन बार नहीं, यदि एक बार भी आर्त दशा में दिल से राम शब्द का उच्चारण कर ले तो उसके सारे संकट और कष्ट दूर हो जाते हैं। तूने तीन बार की आशा को व्यर्थ किया। इससे तो उल्टा राम की महिमा का धक्का पहुंचा। पर सही रूप में देखा जाय तो बाल्यावस्था में कमाल ने कमाल ही कर दिखाया, जो क्षण भर में कोढ़ी के घाव भर और उसे स्वस्थ बना दिया।

कमाल की हिन्दी-वाणी बहुत बतायी जाती है। परन्तु इसका स्वतंत्र से अभी तक संकलन नहीं हुआ है। नीचे उनके पद उदाहरण के लिए दिये जाते हैं —

> अजर अमर अविनाशी साहिब, नर देही क्यों आया।
> इतनी समझ बूझ नहीं मूरख, आय जाय सो माया।।
>
> गाठ खुली नहिं जड चेतन को, ध्यान कथे बे अन्ता।
> सत असत की खबर न आई, जाने न सन्त असन्ता।।
>
> ज्ञानी ज्ञान कथे निस बासर, वह तो अति अज्ञानी।
> निज मन को कुछ सुधि नहिं पाई, आठ पहर अभिमानी।।
>
> राजा दुखी, दुखी बनवासी, दुखी रंक विपरीती।
> गुरु कृपा से सबि सुखी भये, मन चंचल को जीती।।
>
> सुख नहीं दौलत माल खजाना, सुख नहिं वाद विवाद।
> सुख है साध सन्त की पूजो, लागी सुन्न समाधि।।
>
> मन दरपन निज मूरति निरखो, देखा सकल पसारा।
> आप आप जान सब जाना, जाना सार असारा।।

राम नाम भज निस दिन वन्द, और मरम पाखण्डा।
बाहिर के पट दे मेरे प्यारे, पिण्ड वेख ब्रह्मण्डा ॥

दास "कमाल" कबीर का बालक, गुरु का निजकर प्यारा।
शब्द वान की चोट लगी जब, पाया सत करतारा ॥

पीर पगम्बर की वानी, यारो मस्त भयो निर्वानी।
राजा रक दोनों बराबर, जसे गगाजल पानी ॥

मार करो कुई मूपर मारो, दोनो मीठी वानी।
कांचन नारी जहर सम देखे, ना पसरे हा पानी ॥

साधु सत से शीश नमावे, हात जोरकर निर्वानी।
कहत कमाल सुनो भाई साधो, ये ही हमारी वानी।
ये ही ध्यान मन मो राखो, और कछु ना जानो ॥

दीन दरवेश

सच्चे ईश्वर भक्त हर एक जाति, धर्म और देश में पैदा होते हैं। वे प्राणी मात्र के शुभचिंतक तथा उपकारी होते हैं। दीन दरवेशजी ने मुसलमान के घर पैदा होने पर भी एक महान पंथ के आचार्य तथा संस्थापक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। उनकी भक्ति, निष्ठा, काव्यसुधा और अध्यात्मविद्या की पूर्ण सम्पन्नता से, आकृष्ट जनता में इनके प्रति नितान्त श्रद्धा बढ़ी थी। वह आदर्श संत, परम रसिक भगवद् भक्त थे।

दीन दरवेश संत का जन्म पाटन ग्राम में हुआ था। यह ग्राम गुजरात प्रान्त में है। उनका जन्मकाल विक्रमी सं० 1660 से 1700 तक का बताया जाता है। इनके सम्प्रदाय को दरवेश पंथ के नाम से जनता जानती है। इस पंथ के वह आचार्य माने जाते हैं। वह बचपन से ही धार्मिक विचारों के थे। बाल्यावस्था से ही इनकी वृत्ति वैराग्य की थी। जब यह बीस वर्ष के हुए, तो इनके मन में वैराग्य तीव्र हो गया। इन्होंने घर त्याग दिया और विरक्त होकर भटकने लगे। उन्होंने धार्मिक स्थानों पर जाना शुरू कर दिया। इनका जगह-जगह घूमने का मतलब इतना ही था कि आखिर सत्य क्या है? इनका भ्रमण सत्य की खोज में ही था।

दीन दरवेश संत प्रथम मुसलमान मुल्ला तथा मौलवियों के पास जाते रहे। उनका सत्संग सुनते रहे। उसे हृदय की कसौटी पर परखते रहे, अंतत आचार और विचार में मेल न बैठने के कारण इन्होंने मुल्ला मौलवियों का संग छोड़ दिया। अब वह सूफी फकीरों के पास पहुंचे और वर्षों तक उनकी सेवा करते रहे। उनका सत्संग सुनते रहे। उनके बताये हुए मार्ग पर चलते रहे और फिर भी जब शांति नहीं मिली तो, इन्होंने मुल्ला मौलवी तथा फकीरों का संग छोड़ दिया।

अब इन्होंने हिंदुओं के सभी तीर्थ स्थानों पर भ्रमण शुरू किया। काशी, मथुरा, वृंदावन, प्रयाग, श्रीनाथ आदि अनेक हिंदू तीर्थ स्थानों को देखा। वहाँ पर ब्राह्मणों की दुकानदारी तथा पाखंडों देखी। सब पाया पाखण्ड नजर आया। मन दुविधा में पड़ गया, फिर भी इन्होंने भ्रमण नहीं छोड़ा।

मनुष्य जब किसी बात के पीछे पड जाता है, तो अंत में उसे प्राप्त कर ही लेता है। यही बात दीन दरवेशजी के जीवन में हुई।

एक दिन एक कबीरपंथी महात्मा से उनकी भेंट हुई। वह पहुंचा हुआ सिद्ध महात्मा था। उसका प्रभाव दीन दरवेशजी पर पडा। उससे वह प्रभावित हुए और उनसे गुरुदीक्षा ली। गुरु उपदेश के अनुसार वर्षों तक एकान्त साधना में रत रहे। इससे उन्हें अनुभव मिला और सत्य का दर्शन हुआ। फिर कुछ काल एकान्त में रहकर उन्होंने गृह आना से जनता में भ्रमण शुरू कर दिया। इस भ्रमण काल में उन्होंने दरवेश पंथ की नींव रखी। अब इनका भ्रमण जनता का सन्मार्ग दिखाने के लिए था।

दीन दरवेशजी को गुजराती के साथ मराठी का भी ज्ञान था। काशी में रहने से इन्हें हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो चुका था। इन्होंने अपनी रचना भी हिन्दी में लिखी है। बचपन से काव्य की रुचि आरम्भ से ही थी। इनके यहां हमेशा ही कवियों का मेला लगा रहता था। अनेक कवि इनके इर्दगिर्द रहते थे। इनका नियम था कि वह हर पूणमासी के दिन अपने सभी शिष्यों तथा कवि मित्रों के साथ सरस्वती नदी पर स्नान करने जाते थे। वहां सत्संग रूप में कवियों का कवितागान भी होता था। हजारों आदमी उसे सुनते थे। असल में कवितागान का यह रूप पंथ प्रचार के लिए ही था। इससे इनका पंथ प्रचार का काय सुचारु रूप से चलता रहा। इनके सत्संग में शामिल श्रोताओं में से बहुत से इनके शिष्य बन जाते थे। इस तरह इनका प्रचार दिनोंदिन खूब बढ़ता गया।

दुनिया में अच्छी बात का भी विरोध करने वाले बहुत लोग होते हैं। हिंदू पंडित तथा हिंदू कवियों के मन में इस बात की जलन थी। दीन दरवेशजी की बढ़ती हुई ख्याति को लेकर उनके मन में बड़ी ईर्ष्या हो गई। वैसे तो हमेशा ही हिंदू पंडितों ने हिंदू संतों से भी बुरा व्यवहार किया है। दीन दरवेश तो बेचारे मुसलमान थे। उनके प्रति वे लोग कहां मानवता बरतने वाले थे। वे तो संतों की पवित्र प्रभावपूर्ण वाणी का रहस्य भी न समझ सके। परिणाम यह हुआ कि इन पंडितों ने जनता को बहकाना शुरू कर दिया। उद्देश्य यही था कि किसी तरह दीन दरवेश को नीचा दिखाया जाये। परन्तु जनमत दीन दरवेश की ओर ही था। जनता ने पंडितों की बातों पर विश्वास नहीं किया उनकी कुचालों को सफल नहीं होने दिया। अंत में इस बात का निर्णय हुआ कि गुजरात के प्रसिद्ध

कवि कान को दीन दरवेश से शास्त्रार्थ कराया जाय। कान कवि संस्कृत के विद्वान थे। इस कार्य के लिए तिथि तथा सिद्धपुर स्थान तय किया गया। निश्चित समय पर दोनों पक्ष के लोग उपस्थित हुए। पाटनी का ठाकुर उस कार्यक्रम का सभापति बनाया गया। दोनों कवियों का भावपूर्ण सम्मेलन शुरू हुआ। प्रारंभ दीन दरवेशजी से कराया गया।

दोनों महान् कवियों की रचनाओं का रस जनता लेने लगी। दोनों में अपनी अपनी विशेषता थी, जो किसी एक को महान् बनाकर पृथक नहीं होने देती थी। सात दिन लगातार शास्त्रार्थ चलता रहा। सभापति ठाकुर साहब कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। आखिर दोनों को समान पुरस्कार देकर विदा करने का निर्णय हुआ। कान कवि को यह बात पसंद नहीं आयी। इससे उसके ब्राह्मणत्व के अभिमान को ठेस पहुंची। उसने ठाकुर साहब से इस प्रकार निर्णय लेने का कारण पूछा। ठाकुर साहब ने स्पष्ट शब्दों में जनता के सामने अपने विचार स्पष्ट किये। उन्होंने कहा –

बाबा दीन दरवेश तथा कान कवि दोनों ही महान है, इसमें कोई शक नहीं। दोनों ही कलाकार हैं। वैसे तो कान कवि संस्कृत के प्रकांड पंडित हैं। संस्कृत कवियों की विचारधारा, भावभंगिमा और संस्कृत की गरिमा सभी कुछ कान कवि में मौजूद है। प्रतिभा की भी आप में कमी नहीं परंतु दीन दरवेशजी में जो बात है, वह आपमें नहीं। दीन दरवेशजी के काव्य में भावों की सरलता, वाणी की मधुरता और प्रभावोत्पादकता सर्वोपरि है। उनकी प्रभु के प्रति, ईश्वर के प्रति मालिक के प्रति अनन्य निष्ठा और दीनता ने जो जादू उनकी रचना में भरा है उसने मेरे हृदय को अभिभूत और भावविभोर कर दिया है। कान कवि की रचना में ईश्वर की बंदगी नहीं है, इसी कारण दीन दरवेश की कविता के सामने कान कवि की रचना नहीं रखी जा सकती। यही मेरे निर्णय का आधार है"।

पंडितों को भी आखिर उन्हें दीन दरवेशजी के महत्व को मानना ही पड़ा। इस घटना से दीन दरवेशजी की सबल प्रतिष्ठा बढ़ी। जनता के मन पर दीन दरवेशजी के प्रति गहरी छाप पड़ी। इस प्रसंग से सबल उनकी प्रसिद्धि हुई। उनके मत का प्रचार बढ़ा। अब इस मत के अनुयायी अधिक नहीं है। फिर भी भारत के दूर देहातों में इस पंथ के अनुयायी भिक्षाटन करते हुए आज भी मिल जाते हैं।

दीन दरवेश की कुण्डली छन्द में अनेक प्रभावशाली रचनाएं हैं, जिनमें से कुछ रचनाएं उदाहरणार्थ नीचे दी जा रही हैं —

(1)

हिंदू कहे सो हम बड़े, मुसलमान कहे हम्म।
एक मूंग दो फाड़ है, कुण ज्यादा कुण कम्म॥

कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया।
एक भगत हो राम, दूजा रहिमान से रजिया॥

कहे दीन "दरवेश" दोय, सरिता मिल सिन्धू।
सबका साहब एक, एक मुसलिम इक हिंदू॥

(2)

गड़े नगारे कूचके, छिनभर छाना नाहिं।
कौन आज, को कालको, पाय पलक के माहिं॥

पाय पलक के माहिं, समझ ले मनवा मेरा।
धरा रहे धन-माल, होयगा जंगल डेरा॥

कहे 'दीन दरवेश', गर्व मत कर गवारे।
छिनभर छाना नाहिं, कूच के गड़े नगारे॥

(3)

बंदा जान न करों, करनहार करतार।
तेरा किया न होयगा, होगा होवनहार॥

होगा होवनहार, बोझ नर यों ही उठावे।
जो विधि लिखा ललाट, प्रतछ फल तैसा पावे॥

कहे 'दीन दरवेश', हुक्म से पात हलन्दा।
करनतार करतार, करेगा क्या तू बन्दा? ॥

(4)

बन्दा बहुत न फूलिये, खुदा खिवेगा नाँहि ।
जोर जुलम की ज नहीं, मिरतलोक के माँहि ॥
मिरतलोक के माँहि, तजुरबा तुरत दिखाव ।
जो नर कर गुमान, सोई जग खत्ता खाव ॥
कहँ 'दीन दरवेश', भूल मत गाफिल गन्दा ।
मिरतलोक के माँहि, फूलिये बहुत न बन्दा ॥

(5)

कौड़ी मिल न भाग बिन, सीखो हुनर हजार ।
क्या नर पाव साहिबो, बिना लेख करतार ॥
बिना लेख करतार, जगत सब फिर फिर आवं ।
भटक फिर बेकाज, गाठ की लाज गवावं ॥
कह दीन दरवेश', दुलो चित चहुदिश दौडी ।
सीखो हुनर हजार, भाग बिन मिले न कौडी ॥

(6)

बदा बाजी झूठ हैं, मत साची कर मान ।
कहां बीरबल गए ह, कहा अकबर खान ॥
कहां अकबर खान, भले की रह भलाई ।
फतहसिंह महाराज, देखि उठ चलिग भाई ॥
कह 'दीन दरवेश', सकल माया का धधा ।
मत साचो कर मान, झूठ ह बाजी बदा ॥

शेख महम्मद बाबा

पीर शेख महम्मद बाबा का नाम तो महाराष्ट्र की संत मालिका में प्रसिद्ध है, परन्तु उनकी जीवन विषयक अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। शेख महम्मद बाबा के बारे में तीन मत हैं। एक मत के अनुसार वह श्रीगोंदा में अवतीर्ण हुए। दूसरे मतानुसार वह मूल रुईबाहिरे के रहनेवाले थे और तीसरे मतानुसार धारूर के थे। इस मत का उल्लेख स्वयं शेख महम्मद बाबा ने अपने मराठी अभंग में किया है। धारूर में शेख महम्मद बाबा का जन्म ई० स० 1565 के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम राजे महम्मद तथा माता का नाम फुल्लेखा था। दोनों पति पत्नी अत्यन्त धर्मपरायण थे। राजे महम्मद सूफी पंथीय कादरी परम्परा के थे। राजे महम्मद की कादरी औलिया की परम्परा में बड़ी प्रसिद्धी थी। वह निजामशाही में बड़े पद पर थे। वह मूल धारूर वंश के थे। वह धारूर किले के हवलदार थे। वह खुलदापुर या खुलताबाद के थे। चद्रभट बोधले राजे महम्मद के सान्निध्य में बड़े हुए। राजे महम्मद पहले धारूर, बाद में देवगिरी, दौलताबाद, उर्फ औरंगाबाद में रहे। हिंदू मुसलमान दोनों ही इनके अनुयायी थे।

शेख महम्मद इस्लामधर्मी थे। उन्होंने अपने धर्म को निष्ठापूर्वक आखिरी दम तक निभाया। वह गृहस्थाश्रमी थे। गृहस्थ का कार्य सुचारु रूप से निभाते हुए अध्यात्म साधना की ओर अग्रसर हुए। उन्होंने अपने पिताजी के शिष्य चांद बोधले के पास ही पठन-पाठन तथा योगाभ्यास किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ से 25 30 वर्ष तक शेख महम्मद बाबा अपने गुरु चांद बोधले के पास ही रहे होंगे। उसके बाद शेख महम्मद बाबा की सर्वत्र प्रसिद्धि हुई। आगे चलकर महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी महाराज के दादा मालोजीराव भोसले तथा उनके दीवान से हेरम्पंत का परिचय हुआ। वह शेख महम्मद बाबा से प्रभावित हुए और बाबा को अहमदनगर जिले के आज के श्रीगोंदा तहसील के गांव में ले आये। यहां मकरंदपुरपेठ में उनका स्थायी निवास बना। ई० स० 1596 में उन्हें एक गुफा बनाकर दी। उसी में शेख महम्मद अपनी योग-साधना करते रहे।

पिता राजे महम्मद की तरह शेख महम्मद गृहस्थाश्रमी थे। श्रीगोंदा में उनकी कब्र के पास ही उनकी पत्नी की कब्र है। शेख महम्मद का वंश अभी भी है। उनके

वश के लागों की कब्रें आज श्रीगोंदा में हैं। शेख महम्मद बाबा के परिवार का पालन करने के लिए मालोजीराव ने कुछ जमीन दान में दी थी। आज भी उनके वंश के पास वह जमीन है। शेख महम्मद बाबा ने किस वर्ष में समाधि ली, इसका ठीक से पता नहीं चलता। कहा जाता है कि बाबा ने समाधि गुफा में ली और उसके कई वर्षों बाद गुफा पर दरगाह बनाया गया। शेख महम्मद बाबा के शिष्यों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे।

शेख महम्मद बाबा के बारे में शिवराम सीताराम बालगे योगसंग्राम ग्रंथ की भूमिका में लिखते हैं कि वह कईंवाहिरे के रहने वाले थे और कसाई थे। बकर काटने का काम करते थे। इसी काम में उन्हें विरक्ति हुई। यही मत प्राचीन संत चरित्रकार महिपति बाबा तथा आधुनिक संत चरित्रकार दासगणू का है, परन्तु इस मत का ऐतिहासिक प्रमाण कुछ भी नहीं है।

श्रीबालगे ने दूसरी कथा इस प्रकार दी है। आलमगीर बादशाह के समय जबरन बेगार ढानी पड़ती थी। जब शेख महम्मद बाबा के सर पर बेगार का बोझ लादा गया तो बोझ उनके सिर के ऊपर सवा हाथ ऊँचा रहा। यह अलौकिक चमत्कार देखकर बादशाह ने जान लिया कि यह कोई सिद्ध, साधु, फकीर-औलिया है। अब आलमगीर ने उनके लिए व्यवस्था की। श्रीगोंदा में मठ बनाकर शेख महम्मद बाबा रहने लगे। इनके गुरु का नाम चाँद बोधले था। शेख महम्मद के समकालीन संत प्रहलाद बाबा, राऊल बाबा, आदि थे। शेख महम्मद बाबा गृहस्थाश्रमी थे। उनकी समाधि की पूजा एक तरफ से हिन्दू तो दूसरी ओर से मुसलमान करते हैं।

श्री दासगणू ने अपने एक आख्यान में शेख महम्मद बाबा का जन्म कसाई कुल में बताया है और खंडवन में योगसाधना करने की चर्चा की है। चाँद बोधले ने गोदावरी के किनारे संत ज्ञानेश्वर जी का ग्रंथ 'ज्ञानेश्वरी' का दान देने की बात कही है। रंगु नाम की बीमार बुढ़िया का ज्ञानेश्वरी सुनकर अच्छा होने की भी चर्चा है।

शेख मुहम्मद बाबा ने अपनी योगसाधना गुडेगाव के तालाब पर की थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। श्रीगोंदा निवासियों का कहना है कि श्रीगोंदा से एक मील दूर एक बड़े पत्थर पर शेख महम्मद बाबा, संत तुकारामजी, श्री गादड बाबा, प्रहलाद-बाबा, राऊल बाबा आदि संत इकट्ठा होकर परमार्थ विषयक चर्चा करते थे।

शेख महम्मद बाबा ने अपने योग संग्राम ग्रंथ में अपने जीवन का एक प्रसंग दिया है जो इस प्रकार है — एक दिन इतवार का रोज था। शेख महम्मद बाबा नदी

(सरस्वती) के किनारे बैठकर ईश्वर की उपासना कर रहे थे। इतने में एक सर्प ने आकर उन्हें तीन बार डस लिया। साँप बहुत ही जहरीला था। उसी समय शेख महम्मद बाबा ने अद्वैत बोध के द्वारा सद्गुरु की आराधना की। गुरु की कृपा से उन्हें विष का असर बिल्कुल नहीं हुआ।

महिपति बाबा ने अपने 'भक्ति विजय' ग्रंथ में शेख महम्मद बाबा के जीवन का प्रसंग इस प्रकार दिया है—एक दिन शेख महम्मद बाबा श्रीगोंदा में अपने मठ में कीर्तन कर रहे थे। हजारों श्रोता बड़ी लगन से कीर्तन सुन रहे थे कि कीर्तन करते करते बाबा ने एकदम छलांग मारी। लोग देखते रह गये। बाबा के हाथ क्षणभर में काले हो गए जैसे कि कोई जला हुआ कपड़ा हाथ से मसल डाला हो। उपस्थित लोगों ने पूछा—बाबा! यह क्या बात है? शेख महम्मद बाबा ने बताया कि अभी देहू नगर में संत तुकारामजी महाराज का कीर्तन चल रहा है। कीर्तन में श्रोता लोग मंत्रमुग्ध हो गए हैं। मशालची भी इतना मस्त हुआ कि उसे कोई भान भी नहीं रहा और भजन के आनन्द में सभी लोगों के साथ उसने भी अपना हाथ ऊपर किया। मशाल मंडप को लगी और लगते ही मंडप जलने लगा। यह सब मैंने यहाँ से देखा और मन में आया कि कीर्तन के रंग में भंग न हो, इसलिए तुरंत आग बुझा दी।

एक श्रोता ने कहा—बाबा! कथा तो विट्ठल भगवान के सामने ही हो रही होगी ना? फिर भक्त वत्सल भगवान को क्या अपने भक्त की बिल्कुल ही चिंता नहीं थी?

इस पर शेख महम्मद बाबा ने कहा—भगवान तो वहाँ ही उपस्थित थे, परंतु वे भी अपना देवत्व भूल गये थे। ऐसी अवस्था में रंग का भंग न हो इसलिए मैंने ऐसा किया।

जनता को बाबा की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। हर एक आदमी मन में यही सोचता रहा कि देहू यहाँ से कोई नजदीक तो नहीं है और बाबा तो हमारे सामने हैं, फिर वहाँ की आग बुझाने का काम यहाँ से कैसे हो सकता है। यह तो निरा-भ्रम है। आखिर इस भ्रम का निर्णय करने की दृष्टि से बाबा ने कहा—आप इस बात की तलाश करके सही जानकारी प्राप्त करो। फिर क्या था। उसी समय पत्र देकर एक घुड़सवार देहू के पटेल के पास भेजा गया। घुड़सवार केवल बारह घंटे में 80–90 मील जाकर वापस आ गया।

शेख महम्मद बाबा की बात बिल्कुल सही निकली।

श्रीगोंदा के मठ मे शेख महम्मद बाबा का एक चरित्र है। इस चरित्र के कर्ता शेख महम्मद बाबा के एक ही शिष्य है। यह चरित्र कब लिखा गया, इसका कोई उल्लेख नही। इस चरित्र म लिखा हुआ है कि शेख महम्मद कबीर का अवतार है। श्रीगोंदा के मकरदपुरपेठ मे शेख महम्मद का अवतार हुआ है। वह अखड समाधि की अवस्था मे रहते है। मुख से नाम सुमिरन करते हैं। राजे महम्मद पिता फुल्लेसा माता (पतिव्रता) के पेट से शेख महम्मद का अवतार हुआ है। उनकी अवतार-लीला का वणन साधु-सतो ने किया है। उस काल के प्रधान सत तुकाराम, रामदास और जयराम स्वामी का शेख महम्मद बाबा पर बडा प्रेम था।

शेख महम्मद बाबा न प्रथम 'योगसग्राम' नामक ग्रथ लिखा। यह ग्रथ तैयार होते ही इसे अपने दो शिष्यो के साथ काशी भेज दिया। वहा जनता न बडे भक्तिभाव से ग्रथ की वदना की। वेदशास्त्र सम्पन्न ब्राह्मणो को अपने पर बडा अभिमान था और मन म मुसलमानो के प्रति घृणा थी। ग्रथ को देखते ही उन्होने कहा कि यह तो एक मुसलमान द्वारा लिखा हुआ है। इस ग्रथ का कौन पढेगा? पढना तो अलग, इसे देखना भी पाप है। इस तरह की घृणात्मक भावना से प्रेरित होकर कुछ ब्राह्मणो ने ग्रथ को गगा की पावन धारा मे विसजन कर दिया। ब्राह्मणो का तो इस कृत्य से आनन्द हुआ, पर अधिकाश जनता को अपार दुख हुआ।

शेख महम्मद बाबा को भी इस बात का पता चला। उन्होन अपने शिष्यो को एक स्ट्याल देकर ग्रथ वापस लाने के लिए कहा। शिष्य ब्राह्मणो के पास गये और ग्रथ वापस देने का अनुरोध किया। इस पर एक ब्राह्मण गगा पर गया। उसने देखा कि ग्रथ को पानी का स्पश भी नही हुआ है। इस बात से सभी ब्राह्मणो को आश्चय हुआ। उनका अभिमान समाप्त हो गया। तब सभी ब्राह्मणो न शेख महम्मद बाबा के 'योगसग्राम ग्रथ' की वदना की। यह ग्रथ काशी म सवमान्य हुआ। काशी से 'योगसग्राम ग्रथ' को लेकर ब्राह्मण श्रीगोंदा पहुचे और वहा शेख महम्मद बाबा का दशन तथा सत्सग किया।

एक दिन काशी के ब्राह्मणो ने महाराष्ट्र के परिसर मे रहने वाले सत-महात्माओ से मिलने की इच्छा व्यक्त की। शेख महम्मद बाबा ने कहा कि देहु मे सत तुकारामजी रहते हैं। बडगाव मे जयराम स्वामी हैं। ये दोनो महान सत हैं। आप इनका दशन करिए। पहले ब्राह्मण बडगाव गये। समथ शिष्य जयराम स्वामी

का राजसी ठाटबाट देखकर ब्राह्मणो के आश्चय की सीमा नही रही। जयराम स्वामी क पास राजा—महाराजाओ स कम ऐश्वय नही था। हाथी पर नौबतखाना था। घोडे, ऊट, गायें आदि असख्य पशु थे। साथ म सवादार तथा पाच सौ शिष्य थे। जिस समय ब्राह्मण वहा पहुचे तो जयराम स्वामी का कीतन चल रहा था। कीतन मे ब्राह्मणो ने उपस्थित जनो का नमस्कार किया। जयराम स्वामी को इस बात का आश्चय हुआ। उन्होन ब्राह्मणो से कहा कि आप ब्राह्मण होकर सभी को नमस्कार करते हो यहा कहा की नई रीति आपने चलाई? तब ब्राह्मणो न कहा, श्रीगोदा म एक सत है। नाम है शेख महम्मद बाबा। प्राणी मात्र को भगवद स्वरूप समझकर नमस्कार करने की उनकी रीति है। वही रीति आज हमने आपके दरबार म अपनाई है। इस पर जयराम स्वामी ने कहा कि वह तो जाति स मुसलमान है उसकी बात आप मुझे बता रहे हो।

बाद म जयराम स्वामी स्वय अपने शिष्यो के साथ शेख महम्मद बाबा को देखने श्रीगोदा गये। मकरद पेठ म गुफा के पास देखा तो वहा शेख महम्मद बाबा नही थे। बाबा को खोजते खोजते जयराम स्वामी सरस्वती नदी के किनारे आये। शेख महम्मद बाबा पाव म नाल लगा हुआ जूता पहनकर खडे थे। जयराम स्वामी ने शेख महम्मद बाबा से पूछा—शेख कहा है? तब बाबा ने कहा—वह तो आम के पेड के नीचे बैठा है। जयराम स्वामी ने जाकर देखा तो वहा एक भयानक शेर बैठा था। शेर को देखकर जयराम स्वामी वापस लौटे और फिर शेख महम्मद बाबा से पूछा—हम शेर क पास क्यो भेजा? तब बाबा ने हसकर कहा—वही तो शेख महम्मद है। उसी समय जयराम स्वामी ने शेर को आलिंगन मे भर लिया। शेर का परिवतन शेख महम्मद बाबा म हुआ। कुछ समय तक बातचीत होने पर शेख महम्मद बाबा ने जयराम स्वामी को कहा—भोजन तैयार है। आप जल्दी स स्नानसध्या करिये। भोजन समाप्त होन पर सध्या समय दोनो सतो की आध्यात्मिक विषय पर चर्चा हुई। बाद म शेख महम्मद बाबा ने सीना चीरकर जनेऊ निकालकर दिखाया और कहा हम भी मूल के ब्राह्मण ही हैं परतु हमे जन्म इस कुल म लेना पडा। बाद म सिर पर का शिवलिंग दिखा दिया। जयराम स्वामी के मन म शेख महम्मद बाबा के प्रति बडी श्रद्धा हुई। मन मे खुशी भी हुई। विदा होते समय जयराम स्वामी को शेख महम्मद बाबा न कहा—आपकी आयु केवल पाच वष बाकी है और हमारी 211 वष। इस पर जयराम स्वामी ने आग्रहपूवक निमत्रण दिया— मेरी समाधि के समय आप आने की कृपा करें।

ढाई वर्ष के पश्चात जयराम स्वामी का समाधि का दिन आया। वडगाव मे जयराम स्वामी ने 5 सितम्बर 1672 को समाधि ली। समाधि महोत्सव के अवसर पर संत तुकाराम जी तथा बहुत से संत पधारे थे। अपार जनसमुदाय उपस्थित हुआ था। जयराम शेख महम्मद बावा की राह देख रहे थे। भंडारे का समय हुआ। संत तुकाराम जी ने भोजन परोसने के लिए कहा। संत तुकाराम जी ने पास ही शेख महम्मद बावा के लिए पात्र परोसा। जनता की दृष्टि से पात्र पर कोई बैठा हुआ नजर नही आता था परन्तु गुप्त रूप से शेख महम्मद बावा भोजन के लिए उपस्थित हो गये थे। इस बात को केवल संत तुकारामजी ही जानते थे। संत तुकारामजी ने सभी को भोजन की आज्ञा दी। भोजन करने वाला व्यक्ति नजर नही आता था, परन्तु पात्र का भोजन समाप्त हो रहा था। भोजन के बाद संत तुकाराम जी ने जयराम स्वामी से कहा—आज तुम्हारा सौभाग्य है। शेख महम्मद बावा अभी अभी भोजन करके गये हैं। अब वह कीर्तन के समय आने वाले है। कुछ देर बाद जयराम स्वामी का कीर्तन शुरू हुआ। कीर्तन मे काफी भीड थी। बैठने के लिए जगह तक नही थी। जयराम स्वामी की पोथी उठाकर शेख महम्मद बावा वहीं बैठ गये। कुछ नासमझ लोगों ने कहा कि यह आदमी तो पांव मे जूते पहनकर बैठा है। कीर्तन मे गडबडी होने लगी। संत तुकाराम जी ने सभी को शांत किया। जयराम स्वामी को शेख महम्मद बावा के आगमन के बारे मे सूचित किया। जयराम स्वामी ने शेख महम्मद बावा को नमस्कार किया। वडगाव मे जयराम स्वामी ने समाधि ली।

शेख महम्मद बावा के कविता संग्रह के दो भाग महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहास संशोधक वासुदेव सीताराम बेन्द्रे ने प्रकाशित किए है। प्रथम भाग मे योग संग्राम ग्रंथ तथा दूसरे भाग मे निष्कलंक प्रबोध, पवन विजय, तत्वसार, कालज्ञान, गायत्री, मदालसा, भक्तिबोध, आचार बोध, रूपके और मराठी हिन्दी कविता है।

शेख महम्मद बावा ने फाल्गुन सुदी नवमी को समाधि ली। आज भी हर वर्ष श्री गोंदा मे इस दिन मेला लगता है। शेख महम्मद बावा ने गीता, कुरान का अच्छी तरह से अध्ययन किया था। इनके साहित्य पर दोनो ग्रंथो के वचनो का प्रभाव दिखायी पडता है। हिन्दू मुसलमान धर्मों के प्रति शेख महम्मद बावा का सम भाव था, इसलिए दोनो धर्मों के लोग बावा के अनुयायी थे।

शेख महम्मद बावा के एक हिंदी वाणी का नमूना अगले पृष्ठ पर देखिए—

7—303 m of I & B (ND)/83

अल्ला का हु बिसारा अभिमानी, पलेपल घटे उमर तेरी ज्यानी ।
पहाड़ पर घन बरसे, पाछे बहुना रहे पानी ।।
तैसी तेरी उमर जाती हाय, घोर ना रहे तरे ज्यानी ।
कागज गीरे आब बीच, ताहां कछु न रहे निशानी ।।
ऐसा एक दिन गन जायेगा, अकल होयगी तेरी लिशानी ।
पानी बीच मछी नें खुशी मानी, पानी गया मछी भई ।।
ऐसा बखत आयेगा, बदगी कर तू धनी ।
तन, धन, औलाद, सब होयगा फनाफनी ।।
दुनिया हिरीस देख ले, तू बहुत खुशी मानी ।
आखर बखत तुजे कौन छुडायेगा, तू हरदम याद कर धनी ।।
ये राग नसीहत सुन लोंको, मत करो तुम गीयत मनी ।
कहत शेख महम्मद अल्ला के, बंद के बोना साची नहे रहनी ।।

ताज

भगवान श्रीकृष्ण की बांसुरी का स्वर कितना मीठा था। उसके स्वर म कितनी मादकता थी। इस स्वर न अपना जादू मारे भक्तो पर डाल दिया था और इसकी मादकता म सारा ब्रज मडल, गाप गोपी पागल हो गये थे। उसकी अमरता, उसका स्थायित्व कृष्ण के नाम के साथ ही प्रकृति और आकाश के पटल पर अंकित हो उठा है। प्रकृति का रगमच खडहर की भाति भले ही भयानक हो जाये, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण की वसी वजती ही रहेगी। उसे न तो प्रलय मिटा सकती है, न ससार की कोई अन्य शक्ति। वह अमर है।

भक्तजन आज भी ब्रज की गोपियो की तरह श्रीकृष्ण के नाम पर नाचते हैं। करताल, वीणा, ढाल, मृदग, मजीरे बजा-बजाकर उन्मादिनी वसी तथा वसीधर की कीर्ति म गीत अलापते हैं।

इस विषय म प्रेम दीवानी मीरा का नाम तो हमारे सामने है ही परन्तु मीरा की भाति अनेक सतो ने जगत में भटक भटक कर विरह का राग अलापा है। ताज इसी श्रेणी की भक्तिन हुई है। मीरा हिंदू थी ताज मुसलमान। इन्हें मुसलमान होने पर भी अपने को भगवान श्रीकृष्ण के प्रेम मे मिटा दिया। योगिनी का रूप धारण कर जिस समय ताज भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम म गान करने लगती थी, तो लोग कह उठते थे कि ताज पगली हो गई। उन्हें क्या मालूम था कि ताज के इस पागलपन मे भक्ति का कितना रहस्य छिपा हुआ है ?

नद के कुमार, कुरवान तेरी सूरत प ।
हू तो मुगलानी, हिंदूआनी ह्वै रहूंगी मैं ॥

ताज कौन थी ? उसका जन्म कहा हुआ ? इनके माता पिता का क्या नाम था ? इसकी अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं। वैसे तो इनका सारा जीवन ही सामान्य जनता की दृष्टि से अधकारमय रहा। यह बडे दुर्भाग्य की बात है। इनका जन्म सवत 1700 के लगभग माना जाता है। यह मुसलमान क्षत्रियों करोली ग्राम मे पैदा हुई। इनके पदों की भाषा से पता चलता

है कि वह पंजाब प्रांत की रहने वाली थी। वह कृष्ण प्रेम की दीवानी थी। कृष्ण से प्रेम हो जाने पर कविता की ओर उनका ध्यान गया। ताज मीरा की भांति गिरधर गोपाल के वियोग में राग अलापा करती थी। हृदय से ताज परम वैष्णव कवयित्री और महाभगवत भक्त थी। वह ठाकुर जी की कृपा से कवयित्री हुई थीं। उनकी सारी कविता कृष्णभक्त के रंग में रंगी है।

ताज रोजाना स्नान कर भगवान् के मंदिर में दर्शन करने जाती थी और भगवत दर्शन के बाद भोजन ग्रहण करती थी। एक दिन वैष्णवों ने उसे मुसलमान विधर्मिनी समझकर मंदिर में ठाकुरजी का दर्शन करने से रोक दिया। ताज बड़ी दुःखी हुई। उसने अन्न-जल त्याग दिया और वह मंदिर के प्रांगण में बैठी रही। भगवान् कृष्ण के नाम का जप करती रही। जब रात हुई और सारा गांव सुनसान हुआ तो स्वयं ठाकुरजी मनुष्य के रूप में भोजन का थाल लेकर ताज के पास आये। कहने लगे—तून आज थोड़ा भी भोजन नहीं किया है। प्रसाद खा ले। ताज ने भक्तवत्सल भगवान के हाथ का प्रसाद ग्रहण किया। भगवान ने ताज से कहा कि कल प्रातःकाल जब सभी वैष्णव मंदिर में आयें तो उनसे कहना कि, तुम लोगों ने कल मुझे ठाकुरजी का प्रसाद और दर्शन का सौभाग्य नहीं दिया। इससे आज रात को ठाकुरजी स्वयं मुझे प्रसाद दे गये हैं और तुम लोगों को संदेश कह गये हैं कि ताज को परम वैष्णव समझो। इसको दर्शन और प्रसाद ग्रहण करने में रुकावट मत डालो। नहीं तो ठाकुरजी तुम लोगों से नाराज हो जायेंगे।

प्रातःकाल जब सब वैष्णव आये, तो ताज ने सारी बातें उनसे कह सुनाई। ताज के सामने भोजन का थाल रखा देखकर वे अत्यन्त चकित हुए। वे सभी वैष्णव ताज के चरणों पर गिर पड़े। सभी क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब से ताज प्रतिदिन भगवान का दर्शन करके प्रसाद ग्रहण करने लगी। पहले ताज मंदिर में जाकर ठाकुरजी का दर्शन कर आती थी, तब सारे वैष्णव दर्शन करने जाते थे। हम यहां पर उनकी कुछ भक्तिपूर्ण कविताओं को उद्धृत कर रहे हैं —

(1)

छल जो छबीला, सब रंग में रंगीला, बडा ।
चित्त का अड़ीला, कहूं देवतो से न्यारा है ।।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत जो है, कान ।
कुंडल मन मोहै, लाल मुकुट सिर धरा है ।।
दुष्ट जन मारे, सब संत जो उबारे, 'ताज' ।
चित्त में निहारे प्रन, प्रीति करनवारा है ।।
नंदजू का प्यारा, जिन कंस को पछारा, वह ।
वृंदावनवारा, कृष्ण साहेब हमारा है ।।

(2)

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम ।
दस्त ही बिकानी, बदनामी भी सहूंगी मैं ।।
देवपूजा ठानी मैं, निवाजहू भुलानी, तजे ।
कलमा कुरान साड़े, गुननि गहूंगी मैं ।।
सावला सलोना सिरताज, सिर कुल्ले दिये, ।
तेरे नेह दाग में, निदाघ ह्वै दहूंगी मैं ।।
नंद के कुमार, कुरबान तेरी सूरत पै, ।
हूं तो मुगलानी, हिंदूआनी ही रहूंगी मैं ।।

(3)

साहब सिरताज हुआ, नन्दजू का आप पूत ।
मार जिन असुर करी, काली सिर छाप है ।।
कुन्दनपुर जायके, सहाय करी भीषम की ।
रुक्मिनी की टक राखी, लगी नहीं खाप है ।।
पाडव की पच्छ करी, द्रौपदी बढ़ाय चीर ।
दीन से सुदामा को, मेटो जिन ताप है ।।
निहच करि सोधि लेहु, ज्ञानी गुनवान बेगि ।
जग में अनूप मित्र, कृष्ण का मिलाप है ।।

(4)

कालिंदी के तीर नीर, निकट कदम्ब कुंज ।
मन कुछ इच्छा कीनी, सेज सरोजन की ।।
अंतर के यामी कामी, कवल के दल लेकें ।
रची सेज तहां शोभा, कहा कहों तिनकी ।।
तिहि समै 'ताज' प्रभु, दम्पति मिले की छवि ।
बरन सकत कोऊ, नाहीं नाहिं छिनकी ।।
राधे को चटक देख, अखियां अटक रही ।
मीन को मटक नाहिं, लाजत वा दिन की ।।

(5)

कोऊ जन सेव शाह, राजा राव ठाकुर को ।
कोऊ जन सेव मरो, भूप काज सारह ।।
कोऊ जन सेव देवो, चंडिका प्रचंड ही कों ।
कोऊ जन सेव ताज, गनपति सिरभारह ।।
कोऊ जन सेव प्रेत, भूत भवसागर को ।
कोऊ जन सेव जप, कह वार वारह ।।
काहू के ईस विधि, संकर को नेम बड़ो ।
मेरे तो अधार एक, नन्द के कुमार ह ।।

कारे बेग

भगवान को भक्तों ने प्रेम से बड़ा किया है। भगवान प्रेम का भूखा है। जो उसे सच्चे मन से चाहता है, वह उसी का हो जाता है। भगवत प्रेम में जाति-पाति, धर्म-सम्प्रदाय, विद्या-बुद्धि, धन ऐश्वर्य आदि की कोई महत्ता नहीं है। स्त्री हो चाहे पुरुष, हिंदू हो चाहे मुसलमान, ईसाई हो चाहे पारसी, पंडित हो चाहे मूर्ख, राजा हो चाहे रंक, ब्राह्मण हो चाहे चाण्डाल, जो उस परम पिता परमात्मा को प्रेम से भजता है, वही उसे पाता है। कारे बेग भी अनन्य श्रीकृष्ण भक्त-संत और साधक थे। इनके जीवन का परिचय हिंदी जगत को नहीं है, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी के क्रमिक विकास का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी को राजभाषा योग्य बनाने, उसको संवारने और सजाने में प्रत्येक वर्ग ने अपना अनमोल योगदान दिया है।

भक्त सुकवि कारे बेग ललितपुर (झांसी) के निवासी थे। जाति से यह रंगरेज मुसलमान थे। इनका जन्म संवत 1700 वि० के आसपास हुआ था। ललितपुर की बजरिया में वह नीम के जिस पेड़ के नीचे बैठकर कपड़े रंगने का अपना रोजगार किया करते थे, वह जगह आज भी बताई जाती है।

भक्त जब उच्च अवस्था में परिणत हो जाता है, तब उसकी उपासना किस सीमा तक सिद्धि प्राप्त कर लेती है, उसका सुंदर उदाहरण कारे बेग के जीवन से प्राप्त होता है। कहा जाता है कि एक बार कारे बेग के प्रौढ़ पुत्र की असामयिक मृत्यु हो गई। कारे बेग ने पुत्र के शव को भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के पास लिटा दिया और भक्तिभाव से प्रार्थना करने लगे। उन्होंने सौ कवित्त कहे। पर जब उनका प्रभाव नहीं हुआ, तब उन्होंने आठ कवित्त और पढ़े। अंतिम कवित्त की समाप्ति पर पुत्र जीवित हो उठा। साधक की साधना सफल हुई, काव्यकला सार्थक हो उठी। इस चमत्कार ने कारे बेग को स्थायी प्रसिद्धि प्राप्त करा दी।

कारे बेग ने सुंदर कविताओं की रचना की है। उन्होंने एक कवित्त में अपने गुरुदेव से विनय की है—

> एहो बुन्देल खण्ड बार बार झाड़ डारौ, हरौ पीर रामदेव, ऐसो गुरु ज्ञानी नहीं।

इससे यही प्रतीत होता है कि उनके गुरु रामदेव थे। इस विषय पर अभी अनुसंधान की आवश्यकता है। उनके एक कवित्त का अंश इस प्रकार है—

> सत्तरह सौ सत्तरह कवि सारे कवित्त कीन्हें।
> नैनन में नैकहू हरिदासन को ठानी नहीं॥

सिद्धहस्त सुलेखक ओरछेश कारे बेग की सुंदर तथा भावपूर्ण रचनाओं से बहुत प्रभावित हुए। सम्वत् 1894-95 वि० में जैरोन (टीकमगढ़) के कुछ मुसलमानों ने जमींदार किसानों की जमीन पर पहले एक चबूतरा बनवाया। फिर वहां पर मस्जिद बनाने लगे। जमींदार किसानों ने चबूतरा तोड़ दिया। आखिर मुसलमानों ने ओरछेश की सेवा में आवेदन पत्र भेज दिया। आवेदन पत्र का लेखक हिंदी भाषी था और ओरछेश उसे पढ़कर बड़े ही प्रभावित हुए। आवेदकों ने कारे बेग की निम्न पंक्ति अंत में लिख दी थी—

> हिंदुन के नाथ तो हमारा कुछ दावा नहीं।
> जगन के नाथ तो हमारी सुध लीजिये॥

इस पंक्ति से ओरछेश द्रवित हो गये और उन्होंने आज्ञा दी की मस्जिद वहीं बनेगी। जमींदार को उस भूमि के बदले में राज्य की कई गुना भूमि दे दी। उनका कहना था कि न्याय में उदार दृष्टिकोण होना चाहिए।

कारे बेग के कवित्त करीबन एक शताब्दी से जनता में प्रसारित हैं। लोग प्रेम से गाते और सुनते हैं। जनसाधारण में प्रचलित अन्य कवित्त भी यदि संग्रहित होकर प्रकाश में आ सकें तो यह एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

(1)

डूबत उबारो ब्रज, मारो मान मघवा को।
कहत कवि कारे, जैसे, आन गिर भार की।।
पछिन के पक्ष तुम, निपक्षन के पूरे पक्ष।
तुच्छन को पच्छ दीनो, न करो फेरफार की,।
तुम हो सहाय मेरे, और नहीं दूजा प्रभु।
रहे कार सार बलि, जाउ अवतार की।।
एहों रनधीर बलभद्रजी के, वीर अब।
हरौं मेरो पीर क्या, हमारी बेर बार की।।
माफ किया मुलक, मताह दे विभीषण को।
कीनो जुबान, कुरबान बेकरार की।।
बठन के ताहीं तू, बजत देख तखत भेजा।
दौलत बढ़ाई तू, जुनारदार यार की।।
उनी क्या निमाज पढ़ी, जब तुमसे राज हुआ।
खबर करी जब ही जब, चिड़ी ही मार की।।
बन्दे की मदगो, विचार कवि कारे कह।
बकासुन विनाशन क्या, हारो बेर बार की।।

(2)

तेरी तो जिकर में, फिकर मन मेरा हुआ।
दे दे दुआ तो सो, तो अरज बार बार की।।
कीजिए मिहिर मोंपे, हूजिए मिहरवान।
सुनिए सुजान गुसा, छोड बार बार की।।
तू साहब है मेरा, म आद नफर तेरा।
त खबरदार मेरा, ल खबर बार-बार की।।
औरन की बेर को, न बेर करनी कारे कह।
नन्द के कुमार क्या, हमारी बेर बार की।।

(3)

मुस्फिक सफीक बदल, दोस्त तू रफीक मेरा ।
तू ही नजदीकी है, हकीकी खयाल कीजिए ॥
बंदे की अरज दस्त, बस्ताये गरज अटकी ।
मेरी ओर देख जरा, अब तो दरस दीजिए ॥
'कारे' का करार पड़ा, तेरे दरम्यान हार ।
अब चाहू दीदार, बेमुरव्वत न हूजिए ॥
हिंदुन के नाथ तो, हमारा कुछ दावा नहीं ।
जगत के नाथ तो, हमारी सुध लीजिए ॥

(4)

छलबल के धाक्यो, अनेक गजराज भारी ।
भयौ बलहीन जब, नेक न छुड़ा गयो ॥
कहिब को भयो करुना, की कवि कारे कह ।
रही नेक नाक ओर, सब ही डुबा गयो ॥
पंकुज से पायन, पयादे पलग छाडि ।
पावड़ो बिसारि प्रभु, ऐसो पीर पा गयो ॥
हाथी के हृदय माहि, आयो हरिनाम सोय ।
गरे लो जो आयो, गुरुदेश तो लो आ गयो ॥

जमाल शाह

महाराष्ट्र के संत-कवियों की सूची में तो केवल इतना ही लिखा है कि इनका मूल नाम विश्वानाथ था। इनके जन्म तथा मृत्यु के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि जब यह अधिक अस्वस्थ होने पर गंगा में प्राण समर्पण कर रहे थे तभी इन्हें भगवान दत्तात्रेय का मलंग वेश में दर्शन हुआ, वहीं से इन्होंने फकीरी अपना ली और फकीर वेष धारण किया।

जमाल शाह के पदों में निवृत्तिपरक भाव है। इनका प्रादुर्भाव 16वीं और 17वीं शताब्दी के मध्य में हुआ होगा, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। समर्थ वाग्देवता मंदिर के हस्तलिखित ग्रंथागार की पोथियों में इनके पद मिलते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह समर्थ रामदास स्वामी के अनुयायी थे। इनके सम्बन्ध में विशेष और विस्तृत जानकारी का अभाव ही है, फिर भी इतना तो उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि यह अपने समय के उल्लेखनीय संतों में से थे। हिन्दू और इस्लाम, दोनों धर्म दर्शनों का प्रभाव और उनके प्रति समान आदर-भाव इनके हृदय में था। इनकी रचनाओं में वैराग्यभाव परिलक्षित होता है। इनके फुटकर पद मिलते हैं। एक हिन्दी पद नीचे दिया जाता है—

दो दिन की गुजरान रे,
सगा साती कौन हमारा,
टिका मकान का न विस्तारा,
बस्ती के वरान रे।
कौन किसी का कुटवकबीला,
कौन किसी का गुरु व चेला,
नाहक ही हरान रे।
नंगा होकर आना जाना,
घडी घडी पल दिन को खोना,
आखर कु घुलधान रे।

अलबेली अली

भक्त अलबेली अली प्रेम की साक्षात मूर्ति थे, उन पर भगवान की प्रेममयी कृपा की निरन्तर वृष्टि होती रहती थी। प्रभु के दिये सुख और संतुष्टि में ही वह अपना मंगल देखते थे। भगवान् के मंगलमय विधान में उनकी अडिग आस्था थी।

इनका जन्म अनुमानतः विक्रमी संवत् अठारहवीं शताब्दी के आदि में हुआ था। अलबेली अली श्रीविष्णु स्वामी सम्प्रदाय में हुए हैं। भाषा के सुकवि होने के अतिरिक्त वह संस्कृत के भी अच्छे पंडित थे। इनका लिखा श्रीस्तोत्र एक सुंदर काव्य ग्रंथ है। उसका एक-एक श्लोक अत्यन्त मनोहर है।

भगवान के भजन की अनन्य साधना और अनुपम प्रीति के कारण राम रस का पान करने वाले कुछ विरले ही संत हुए हैं। उनमें श्री अलबेली अली का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। भगवान् की सेवा में नित्यप्रति रहकर इन्होंने प्रभु को बहुत समीप से देखा और उनकी लीलाओं का अमृतपान भी किया। अलबेली अली महात्मा श्रीवंशी अली के कृपापात्र शिष्य थे। 'अष्टयाम' में इनके कुछ पद बड़े ही सुंदर हैं—

नृत्यति नवल नवेली, पिय अंसनि भुज मेली।

पिय अंसनि झुकि चलत मदगति, लेति सुलय सुखदाई॥

कुंतल हलनि, चलनि कल कुंडल, अंग मंडनि छवि छाई।

अधरनि डुलनि नकमोती, मनो करत रसकेली॥

चंचल चौंध चपल चपला सी, नृत्यति नवल नवेली।

शाह हुसेन फकीर

महाराष्ट्र के प्राचीन संत मंडली में शाह हुसेन फकीर का नाम बडे गौरव के साथ लिया जाता है । महाकवि मोरोपंत ने शाह हुसेन फकीर की वाणी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है । इस संत कवि के मराठी गीत और कुछ हिंदी पद पाये जाते है । इस संत कवि का नाम उसकी रचना में शाह हुसेन फकीर, शाह फकीर, शाहू फकीर, हुसेन फकीर, आदि विभिन्न नाम पाये जाते हैं । इस संत कवि ने अपनी कविता में भगवान श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन बहुत ही अच्छा किया है । इनके दो हिंदी पद इस प्रकार है —

(1)

कोई भिच्छा फकीरी लावणा,
हाजर होकर भेजणा,
तेरे कारण जोगण होऊगी,
घर पर अलग जगावणा,
शाहुसेन फकीरी आल्हवा,
आसर जगल बसावणा ।

(2)

तीरथ कौन करे ।
हमारी तीरथ कौन करे ।।ध्रु०।।

मनमो गंगा मनमो जमुना ।
मनमो ध्यान धरे ।।
मनमो मुद्रा, मनमो आसन ।
उन्मनि ध्यान धरे ।।

शाह हुसेन फकीर कहता है ।
भटकत कौन फिरे ।।

जंगली फकीर सय्यद हुसैन

बुडवाल सिद्ध नागनाथ को अपना गुरुदेव माननेवाला एक मुसलमान संत आलमखान जंगली फकीर सय्यद हुसैन है। 'जंगली फकीर' यह इस संत कवि का लोकप्रिय नाम है असली नाम सय्यद हुसैन ही है। इस संत कवि ने अपने काव्य में जंगली फकीर और सय्यद हुसैन ऐसे दोनों नामों का उल्लेख किया है। इन्होंने मुख्यतः पौराणिक कथा पर ही काव्य रचना की है। इनके साहित्य अधिकतर मराठी में हैं। धुलिया के समर्थ वाग्देवता मंदिर में इनका साहित्य उपलब्ध है। उनका हिन्दी पद इस प्रकार है –

कमजात बचा इल्म को, सीखा तो क्या हुआ।
घोडे चढा हाकिम, नामी हुआ तो क्या हुआ॥
हिकमत सीखा लुकमानीसा, ज्ञाता हुवा तो क्या हुवा।
बेदा जु पढता फर्द है, साहेब सखी मुख जर्द है॥
गलता नहीं दिल सर्द है, फाजल हुआ तो क्या हुआ।
कातिब हुवा या खुश कलम, इन्सान के दया न तन॥
रहता नहीं साबूत मन, मुंशी हुवा तो क्या हुवा।
आखिर कु पछतायगा, गैब तमाचे खायगा॥
रुस्तम हुवा तो क्या हुवा, बस कर हुसनी बात कु।
मत ले उसे भी सात कु, लानत खुदा उस जात कु॥
आया मिला सो क्या हुआ।

दरिया साहब
(बिहारवाले)

जिन दिनों मारवाड़ में दरिया साहब मौजूद थे, उन्हीं दिनों बिहार में भी एक दरिया साहब हुए थे। इनका जन्म प्राय संवत् 1731 में धरकधा (जिला शाहाबाद) नामक ग्राम में हुआ था। इनके धर्म के बारे में जनता में दो मत हैं। कोई मुसलमान मानते हैं, तो कोई इन्हें हिंदू क्षत्रिय बतलाते हैं। दरिया सागर ग्रंथ के अंत में लिखा है —

भादो बदी चौथी वार सुक्र, गवन कियो छपलोक।
जो जन शब्द विवेकिया, मेटेऊ सकल सब सोक॥
संवत् अठारह सो सतीस, भादो चौथी अधार।
सवा जाम जब रजनिगो, दरिया गौन विचार॥

दरिया साहब विक्रमी संवत् 1837 मिति भादो बदी 4 को परमधाम सिधारे। इस धरती पर वह 106 वर्ष रहे। दरिया साहब को श्रद्धालु जनता संत कबीर का अवतार मानती है। एक किंवदंती के अनुसार एक महीने की अवस्था में ईश्वर ने इन्हें माता की गोद में दर्शन दिए और दरिया नाम बख्शा। नौ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। केवल पंद्रह वर्ष की अवस्था में इनको वैराग्य प्राप्त हुआ। बीस वर्ष की उम्र में इनकी महिमा सर्वत्र फैल गयी। तीस वर्ष की अवस्था में सत्संग करना, उपदेश देना, मंत्र देना इन्होंने शुरू किया। इनके मत में वेद, सगुण अर्थात अवतार स्वरूपों की पूजा, मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, नेम, आचार, जाति भेद इत्यादि का खंडन किया गया है। मद्य, मांस तथा हर तरह का नशा मना किया गया है। केवल निर्गुण और सतपुरुष को ही इन्होंने माना है। इसी कारण पंडितों ने इनका बड़ा विरोध किया। इस पंथ के बहुत से रीति रिवाज मुसलमानी रीतियों से मिलते हैं।

• दरिया साहब जीवन भर धरकधा में रहे। यद्यपि थोड़े दिन के लिए काशी, मगहर (जि० बस्ती) बाईसी (जि० गाजीपुर) हरदी व लहठान (जि० शाहाबाद) यात्रा और उपदेश देने के लिए गए थे। इनके 36 शिष्य हैं। जिनमें दलदासजी प्रधान थे। धरकधा में इस पंथ का तख्त है।

दरिया साहब ने बहुत से ग्रंथ रचे, 'जिनमें दरिया सागर' और 'ज्ञान दीपक' प्रधान है। अन्य ग्रंथ हैं —'ज्ञान रत्न', ज्ञान मूल', 'ज्ञान स्वरोदय', 'निर्भय ज्ञान',

'अग्रज्ञान', विवेक सागर', 'ब्रह्मज्ञान,' 'भक्ति हेत,' 'अमर सार,' 'प्रेम मूला,' 'काल' चरित्र, 'मूरत उखाड,' दरिया नामा', गणेश गोष्ठी', 'रमेश गोष्ठी', 'बीजक' और 'सतसइया', इत्यादि। दरिया साहब पंथ के साधु और गृहस्थ बिहार, तिरहुत, गोरखपुर, बलिया, और कटक में बहुत हैं।

पद

दरिया दिल दरियाव हैं, अगम अपार बेअन्त।
सबमह तुम, तुम में सबै, जानि मरम कोई संत॥

जगम जोगी सेवडा, पडे काल के हाथ।
कह दरिया सोई बाचि है, जो सतनाम के साथ॥

पेड को पकड, तब डार पातो मिल।
डार गहि पकड, नहिं पेड यारा॥

देख दिव दष्टि, असमान में चन्द्र है।
चन्द्र की ज्योति, अनगिनित तारा॥

आदि औ अंत सब, मध्य है मूल में।
मूल में फूल, धो केति डारा॥

नाम निर्लेप निर्गुन, निर्मल बर।
एक से अनंत, सब जगत सारा॥

पढि बेद कितेब, विस्तार वक्ता कथ।
हारि बेचून वह नूर प्यारा॥

नि पेच निर्वान, नि कम निभम वह।
एक सबका, सत नाम प्यारा॥

तजु गाम भनी हरू, काम को काबू यह।
खोजु सतगुरु, भरपूर सूरा॥

असमान के बूंद, गरकाब हुआ।
दरियाव की लहरी, फहिर बहुरि मूरा॥

शेख निसार

इनका जन्म ई० सन 1722 माना गया है। अवध के अंतर्गत शेखपुर नामक कस्बा इनका जन्म स्थान है। कवि निसार ने कहा है 'शेखपुर' उनके पूर्वज शेख अबीबुल्ला ने बसाया था। वह देहली से अवध आये और बीस वर्ष तक यहीं रहे। शेख निसार के पुत्र का नाम गुलाम मुहम्मद था। वह प्रसिद्ध मौलाना रूप के वंशज थे। अरबी, फारसी, तुर्की और संस्कृत कई भाषाओं में कवि की गति थी। इन्होंने सात ग्रंथ लिखे हैं।। इनका आखिरी ग्रंथ 'युसूफ जुलेखा' है।

युसुफ जुलेखा

आदि खंड

सुमिरों प्रथम स्वरूप सुहावा। आदि प्रेम निज तन उपजावा।।
उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बिहुरि पवन अपुव उपजावा।।
आगिन ते पवन पवन ते पानी। पुनि पानी से खेह उडानी।।
यहि सब ते उपज्यो ससारा। धरती सरग सूर ससि तारा।।
चारि तत में सब कुछ साजा। पांचयें तन् आकास बिराजा।।
मुनि रिष प्रथव दूत विठाये। अगम अस्थवर उपजाए।
प्रेम अगिन तेहि काहू सभारा। रचा मनुष बहु विधि विस्तारा।।
तेहि सौंपा वह प्रेम मयाती। दीपक माह धरा जस बाती।।
तेहि बाती महँ आय छिपाए। होय परछिन पुनि देह जराए।।

नूर मुहम्मद

कवि नूरमुहम्मद आजमगढ़ जिले के सबरहद नगर वाले बताये हैं। गजेटियर में इस स्थान का कोई पता नहीं चलता। श्री चन्द्रबली पांडे ने इस स्थान को जौनपुर जिले में बतलाया है। 'अनुराग बाँसुरी' में इन्होंने अपना उपनाम कामयाब लिखा है। 'इंद्रावती' और 'अनुराग बाँसुरी' के अतिरिक्त 'नलदमन कहानी' के अनुसार इनकी एक रचना 'नलदमन' भी है। यह अंतिम मुगल सम्राट मुहम्मदशाह के समकालीन थे। अपने ग्रंथ का रचना काल नूर मुहम्मद ने सन् 1157 हिजरी (संवत् 1801) दिया है। पं० रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहा गया है कि इस ग्रंथ (इंद्रावती) को इसी पद्धति का अंतिम ग्रंथ मानना चाहिए।

इंद्रावती

स्तुति खंड

धन्य आप जग दिन्ह हारा। जिन जिन तनुम अमरा संवारा॥
होत जग को आपुहि राजा। राज चोब जग को तोहि छाजा॥
दीन्हा मन मय परिचारों। दीन्हा रसना साहि बखानों॥
बात सुन एह सरमन दीन्हा। दीन्हो बुधि ज्ञान तहि चीन्हा॥
गगन किए सोभा कीन्हे सितारा। धरती सोभा मनुष संवारा॥

शेख नबी

आप जौनपुर जिले में दोसपुर के पास मऊ नामक स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने ज्ञानदीप आख्यान काव्य लिखा है। कवि ने अपनी रचना 'ज्ञानदीप' का निर्माण काल 1026 ई० दिया है।

अलवेमऊ दोसपुर थाना। जाउनपुर सरकार सुजाना।
तहवाँ शेख नबी कवि कही। सबद अमर गुन निर्मल रही।।

—ज्ञानदीप।

मुरादुदीन दिनपति, जहाँगीर नितनेय।
कुल दीपक द्युति सकल को, साहेब साहि सलेम।।

—ज्ञानदीप

एक हजार सन रहे छबीसा। राज्य सुलही गनहु बरीसा।।
समत सोरह से छोंहतारा। उफति गरत कीन्ह अनुसारा।।

—ज्ञानदीप।

मुल्ला वजही

वह गोवलकोंडा के कुतुबशाही शासकों के राजाश्रित कवि थे। इनकी तीन रचनाएं (1) कुतुब मुश्तरी (2) ताजुल हकायक (3) सबरस मिलती हैं। कुतुब मुश्तरी के प्रारम्भ में कवि ने इब्राहिम कुतुबशाह (1550-1580 ई०) का स्मरण किया है।

इब्राहिम कुतुबशाह राजाधिराज।
शहंशाह है शाहंशाहों में आज।।

जिते पादशाहाँ हैं संसार के।
भिखारी हैं सब उसके दरबार के।।

शेख अब्दुल कुद्दूस

इनका जन्म 1456 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम शेख इस्माइल था। वह रुदौली के निवासी थे। शेख अब्दुल कुद्दूस बाल्यावस्था से ही अल्लाह के ध्यान में मग्न रहते थे। बाल्यकाल में उनके मन में यह इच्छा थी कि जंगल में जाकर तपस्या करूं। एकबार वह कुरआन की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, तो दस-बारह दिनों तक इन्होंने जल का सेवन भी नहीं किया था। मस्जिद में पहुंचकर नमाज पढ़नेवाले सभी भाइयों के जूते सीधे करके रख देते थे। ताकि उन लोगों को जूता पहनने में सुविधा हो।

आपकी इच्छा विवाह करने की नहीं थी, किन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण विवाह किया। शेख अब्दुल कुद्दूस के कई पुत्र थे और उनके चेले भी बड़ी संख्या में थे। उनका स्थान उनके पुत्र शेख रुक्नुद्दीन ने लिया था। 1579 ई० में शेख साहब जबरदस्ती हज के लिए भेजे गए। दो साल बाद अत्यधिक कष्ट भोगकर 1586 ई० में उनकी मृत्यु हुई।

कदायन का हिंदी पाठ —

ऊंच बिरिख फल लाग अकासा। हाथ चढ़ै कहु नाहीं आसा ॥
कहु जोगत को बाहु पसारै। तरुवर डाल छुय को पारै ॥
राती दिवस बहुत रखवारा। नयन देख जाइ सो मारा ॥

कुतुबन

उनका समय विक्रम की सोलहवी शताब्दी का मध्यभाग (संवत 1550)था। वह चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। जौनपुर के बादशाह हुसैनशाह के वह आश्रित थ। इन्होने 'मृगावती' नाम की एक कहानी चौपाई दोहे के क्रम से सन 909 हिजरी (संवत् 1558) मे लिखी, जिसमे चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। इस कहानी के द्वारा कवि ने प्रेम मार्ग के त्याग और कष्ट का निरूपण करके साधक के भगवत्प्रेम का स्वरूप दिखाया है।

रुकमिनि पुनिवैसहि मरि गई। कुलवंती सत सो सति भई।।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर को रह न जोई।।
विधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।।

मझन

इनके सबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। केवल इनकी रचित मधुमालती की प्रति मिलती है। यह रचना विक्रम संवत 1550 और 1595 (पद्मावत का रचना काल) के बीच में संभव है। उसी रचना के कुछ अंश इस प्रकार हैं, जैसा मझन कहते हैं —

देखत ही पहिचानेउ तोही। एक रूप जेहि छंदरयो मोही।।
एही रूप बुत अह छपाना। एही रूप रव सृष्टि समाना।।
एही रूप सकती औसीऊ। एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ।।
एही रूप प्रगट बहु भेसा। एही रूप जग रक नरेसा।।

ईश्वर का विरह सूफियों के यहा भक्त की प्रधान सम्पत्ति है, जिसके बिना साधना के मार्ग में कोई प्रवृत्त नहीं हो सकता, किसी की आंखें नहीं खुल सकती।

विरह अवधि अवगाह अपारा। कोटि माहि एक परे त पारा।।
विरह की जगत अबिरथा जाही। विरह रूप यह सृष्टि सबाही।।
नैन विरह अंजन जिन सारा। विरह रूप दरपन संसारा।।
कोटि माहि, बिरला जग कोई। जाहि सरीर विरह दुख होई।।

रतन की सागर सागरहि, गजमोती गज कोई।
चंदन की बनबन उपजै, विरह कि तन-तन होई।।

जिसके हृदय में यह विरह होता है, उसके लिए यह संसार स्वच्छ दर्पण हो जाता है और इसमें परमात्मा के आभास अनेक रूपों में मिलते हैं। तब वह देखता है कि इस सृष्टि के सारे रूप, सारे व्यापार उसी का विरह प्रगट कर रहे हैं। ये भाव प्रेम मार्गी सूफी संप्रदाय के सभी कवियों में पाये जाते हैं।

मलिक मुहम्मद जायसी

वह प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे। वह जायस में रहते थे। इनकी एक छोटी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी में छपी है। यह सन् 936 हिजरी में (सन 1528 ईसवी के लगभग) बाबर के समय में लिखी गई है। इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के सम्बन्ध में लिखा है —

भा अवतार मोर नौ सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।।

इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य जत में आता है। जन्म काल 900 हिजरी मानें तो दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से 30 वर्ष पीछे जायसी कविता करने लगे। जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है 'पदमावत'। जिसका रचना-काल कवि ने इस प्रकार दिया है —

सन नौसै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।।

पदमावत की कथा के प्रारंभिक वचन (अरंभ बैन) कवि ने 927 हिजरी (सन 1520 ई० के लगभग) में कहे थे। पर ग्रंथारंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाहेवक्त शेरशाह की प्रशंसा की है —

शेरशाह दिल्ली सुलतानू। चारहु खंड तपै जस भानू।।
ओही छाज राज औ पाटू। सब राजै भुइँ धरा ललाटू।।

शेरशाह के शासन का आरंभ 947 हिजरी अर्थात सन् 1540 ई० में हुआ। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् 1520 ई० में ही बनाये थे। पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया गया। पदमावत का एक बंगला अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने 1650 ई० के आसपास आलोउजालो नामक एक कवि से कराया था। उसमें भी नौ 'नव से सत्ताइस' ही माना गया है —

शेख मुहम्मद जति जखन। रचिल ग्रंथ संख्या सप्तविंश नवशत।।

जायसी देखने में कुरूप और काने थे। कहते हैं कि शेरशाह ने इनके रूप को देखकर हँसा था। इस पर वह बोले 'मोहिका हँससि कि कोहरहिं' इनके समय में ही इनके शिष्य फकीर इनके बनाये भावपूर्ण दोहे चौपाइयाँ गाते-फिरते थे।

यह अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से दो मील दूर एक जंगल में रहा करते थे। वहीं इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने तीन पुस्तकें लिखी हैं। एक तो पद्मावत, दूसरी अखरावट और तीसरी आखिरी कलाम।

अखरावट में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सिद्धांत संबंधी तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किए गये हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'पद्मावत' जायसी के अक्षय कीर्ति का आधार है। जायसी का हृदय कैसा कोमल और प्रेम की पीर से भरा था।

प्रेम गाथा की परंपरा में पद्मावत सबसे प्रौढ़ और सरस है। प्रेममार्गी सूफी कवियों और कथाओं से इसकी यह विशेषता है कि इसके ब्योरे से भी साधना के मार्ग, उसकी कठिनाइयों और सिद्धि के स्वरूप आदि की जगह जगह व्यंजना मिलती है। जैसा कि कवि ने स्वयं ग्रंथ की समाप्ति पर कहा है —

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोई एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू॥

पद्मावत में जायसी ने पद्मिनी के रूप का जो वर्णन किया है वह पाठक को सौंदर्य की भावना में मग्न कर देता है। अनेक प्रकार के अलंकारों की योजना उसमें पाई जाती है। कुछ पद्य लीजिए —

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥
ससि मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिनि झाँपि लीन्ह चहुँ पासा॥
ओनई घटा परी जग छाँहा। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा॥
भूमि चकोर दीठि मुख लावा। मेघ घटा महँ चंद देखावा॥

पद्मिनी के रूप वर्णन में जायसी ने कहीं कहीं उस अनंत सौंदर्य की ओर, जिसके विरह में यह सारी सृष्टि व्याकुल सी है, बड़े ही सुंदर ढंग से संकेत किया है। —

बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥
उन बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥

गगन नखत जो जाहि न गने । ये सब बान ओहि के हने ॥
धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ़ देहि सब साखी ॥
रोव रोव मानुस तन ठाढ़े । सूतहि सूत बेध अस गाढ़े ॥

बरुनि बान अस ओपहँ बेधे रन बन ढाख ।
सौजहि तन सब रोवाँ, पखहि तन सब पाँख ॥

इसी प्रकार यात्री रत्नसेन के कठिन मार्ग के प्रसंग में साधक के मार्ग के विघ्नों (काम, क्रोध आदि विकारों) की व्यंजना की गयी है —

ओहि मिलान जो पहुँचे कोई । तब हम कहब पुरुष भल सोई ॥
है आगे परबत के बाटा । विषम पहार अगम सुठि घाटा ॥
बिच बिच नदी खोह औ नारा । ठावँहि ठावँ बैठ बटपारा ॥

उसमान

वह गाजीपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम शेख हुसैन था। वह पांच भाई थे। वह जहांगीर के साथ थे। वह शाह निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्य परंपरा में हाजी बाबा के शिष्य थे। इन्होंने अपना उपनाम 'मान' लिखा है। उसमान ने 1022 हिजरी अर्थात् 1613 ईसवी में 'चित्रावली नामक पुस्तक लिखी। उसमें कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है –

> आदि हुता विधि माथे लिखा। अक्षर चारि पढ़ हम सिखा।।
> देखत जगत चला सब जाई। एक बचन पै अमर रहाई।।
> बचन समान सुधा जग नाहीं। जेहि पाए कवि अमर रहाहीं।।
> मोहूँ चाउ उठा पुनि होए। होउँ अमर यह अमरित पीए।।

विरह वर्णन के अंतर्गत बसंत ऋतु का वर्णन सरस और मनोहर है –

> ऋतु बसंत सन मौवन फूला। जहँ जहँ भौंर कुसुम रँग भूला।।
> आहि कहाँ सो भवर हमारा। जेहि बिनु बसत बसंत उजारा।।
> रात बरन पुनि देखि न जाई। मानहुँ दवा दहूँ दिसि लाई।।
> रतिपति दुरद ऋतुपति बली। कानन देह आई दलमली।।

कासिम शाह

वह दरियाबाद (बाराबंकी) के रहने वाले थे। सं० 1788 के लगभग यह वर्तमान थे। इन्होंने 'हंस जवाहिर' नाम की कहानी लिखी है जिसमें राजा हंस और रानी जवाहिर की कथा का सार वर्णित किया है –

कथा जो एक गुपुत महँ रहा। सो परगट उघारि मैं कहा॥
हंस जवाहिर बिधि औतारा। निरमल रूप सो दई सँवारा॥
बलख नगर बुरहान सुलतानू। तेहि घर हंस भये जस भानू॥
आलमसाह चीनपति भारी। तेहि घर जनमी जवाहिर बारी॥
तेहि कारन वह भएउ बियोगी। गएउ सो छाँड़ि देस होइ जोगी॥
अंत जवाहिर हंस घर आनी। सो जग महँ यह गयउ बखानी॥
सो सुनि ज्ञान कथा मैं कीन्हा। लिखेउँ सो प्रेम रहै जग चीन्हा॥

कादिर

कादिर बख्श पिहानी का जन्म सं० 1635 माना जाता है। वह जिला हरदोई के रहनेवाले थे। सैय्यद इब्राहिम के शिष्य थे। इनका कविता-काल सं० 1660 के आसपास समझा जाता है। इनकी कोई पुस्तक नहीं है, बल्कि फुटकर कवित्त पाये जाते हैं –

गुन को न पूछै कोउ, औगुन की बात पूछै।
कहा भयो दई, कलिकाल या खरानो है॥

पोथी और पुरान ज्ञान, ठटठ में डारि देत।
चुगल चबाइन को, मान ठहरानो है॥

कादिर कहत यासों, कछु कहिये की नाहिं।
जगत की रीति देखि, चुप मन मानो है॥

खोलि देखो हियो, सब ओरन भांति भांति।
गुन ना हिरानो, गुनगाहक हिरानो है॥

मुबारक

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी फारसी और अरबी के अच्छे पंडित और हिन्दी के सहृदय कवि थे। इनका जन्म बिलग्रामी में संवत् 1640 में हुआ था। इनका कविता काल सं० 1670 के आसपास मानना चाहिए। यह केवल शृंगार की कविता करते थे। इनका प्राप्त ग्रंथ अलकशतक और तिलशतक है।

अलकशतक और तिलशतक से :—

परी मुबारक तिय बदन, अलक ओप अति होय।
मनो चंद की गोद में, रही निसा-सी सोय॥

चिबुक कूप में मन पर्‍यो, छबिजल तृषा बिचारि।
कढ़ति मुबारक ताहि तिय, अलक डोरि-सी डारि॥

चिबुक कूप रसरी अलक, तिल सु चरस दृग बैल।
बारी बैस सिंगार को, सींचत मनमथ छैल॥

फुटकल से :—

कनक बरन बाल, नगन लसत भाल।
मोतिन के माल उर, सोहै भली भाँति है॥

चंदन चढ़ाय चारु, चंदमुखी मोहनी-सी।
प्रात ही अन्हाय पग, धारे मुसुकात है॥

चूनरी विचित्र स्याम, सजि कै मुबारक जू।
ढाँकि नखसिख सें, निपट सकुचाति हैं॥

चंद्रमें लपेटि कै, समेटि कै नखत मानो।
दिन को प्रणाम किए, राति चली जाती है॥

जमाल

वह कोई सहृदय मुसलमान कवि थे। इनका रचना काल संवत 1627 के आसपास अनुमानित है। इनके नीति और शृंगार के दोहे राजस्थान में लोकप्रिय हैं। उसके कुछ नमूने दिये जा रहे है —

पूनम चाँद, कुसुम रंग, नदी तीर द्रुम डाल।
रेत भीत, भुस लीपणो, एथिर नहीं जमाल ॥

रंग ज चोल मजीठ का, संत वचन प्रतिपाल।
पाहण रेखरु करम गत, एकिमि मिटे, जमाल ॥

जमला ऐसी प्रीति कर, जसी केस कराय।
कै काला, कै उजला, जब तब सिर स्यू जाय ॥

मनसा तो गाहक भरा, नेना भरा दलाल।
धनी वसत बेचे नहीं, किस विधि बने जमाल ॥

बालपणे धौला भया, तरुणपणे भया लाल।
वृद्धपणे काला भया, कारण कोण जमाल ॥

कामिण जावक रंग रच्या, दमकत मुक्तर कोर।
इम हंसा मोती तजे, इम चुग-चुग लिए चकोर ॥

गुलाब नबी 'रसलीन'

इनका जन्म बिलग्राम में 30 जून सन् 1699 ई० को सैयद वंश में बाघर के रूप में हुआ था। रसलीन स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इस स्वाभिमानी गुण सम्पन्न कवि ने अंत में रामचैतोनी के युद्ध में लड़ते हुए सन् 1750 ई० में वीर गति पाई। इनके काव्य का नमूना देखें —

शांतरस कवित्त

तेरेई मनोरथ को होत है सपन लोक ।
तूही ह्वय अकास करे नखत उदोत है ॥
तूही पाचो तत्व सैल तरु पक्षी होत ।
तूही ह्वय मनुख पूजे गोत अवगोत है ॥
तूही बन नारी फिर ताके रसलीन होत ।
तूही ह्वय के सत्रु लेते आपन सें पोत है ॥
जाग परे झूठो जो सपन लोक होत सोंही ।
आतमा विचारलोक जागत को होत है ॥

नबी की स्तुति :–

नूरइलाह ते अव्वलनूर मुहम्मद को प्रगच्यो सुभ आई । पाछें भये तिहुलोक जहां लगक सब सृष्टि जो दृष्टि दिखाई ॥ आदि दलील को अंत की रसलीन जो बात धई पुनि पाई । तौ लौ न पावें इलाही को फसे हू जो लौ मुहम्मद में समाई ॥

GIPN—Sec 1—303 M of I & B (ND)/83—18 10-84—3 000